रूपतापस

अनुवाद
देवलीना

# रूपतापस

शंकर



विद्या प्रकाशन मन्दिर

नई दिल्ली-११०००२.

## शंकर

शंकर बंगला कथा-साहित्य के सशक्त हस्ताक्षरों में से एक। हिन्दी में भी ढेर सारी रचनाएँ अनूदित। हिन्दी ही क्यों, अन्य भारतीय तथा विदेशी भाषाओं में भी इनका कथा-साहित्य चर्चित एवं अनूदित। शंकर अनकहा ही कहते हैं। यही उनका वैशिष्ट्य है। 'कितना अजाना रे', 'चौरंगी', 'निवेदिता रिसर्च लेबोरेटरी', 'आशा-आकांक्षा', 'सुवर्ण सुयोग', 'जन आरण्य', 'सीमाबद्ध' आदि शंकर की विशिष्ट कृतियाँ हैं। 'जन आरण्य' और 'सीमाबद्ध' पर प्रसिद्ध निर्देशक सत्यजित राय ने फिल्में भी बनायी हैं। यह शंकर विषपायी नहीं हैं। यह समाज के गरल को घोटकर समाज को ही पिलाने वाले सिद्धहस्त विष-वैद्य हैं।

प्रस्तुत उपन्यास की कथावस्तु एक मूर्तिकार के जीवन पर आधारित ऐसी रम्य रचना है कि पत्थरों के परिवेश में से भी आह्लादकारी रस झरता है। जीवन की कोमल संवेदनाएँ कैसे प्रस्फुटित और पल्लवित होती हैं—यह शंकर की सिद्धहस्त लेखनी की ही सामर्थ्य की बात है। यह वर्ष शंकर के साहित्यिक जीवन का रजत-जयन्ती वर्ष है।

हमारी हार्दिक शुभकामनाएँ! असंख्य बधाइयाँ!!

—साप्ताहिक हिन्दुस्तान

संगीत, चित्रकला, मूर्तिकला आदि की जितनी ललित कलाएं हैं, उनमें भी शिल्पी या मूर्तिकार की हालत सबसे दयनीय है। छपी हुई किताबों के माध्यम से लेखक, ग्रामोफोन-रेकार्डों तथा संगीत-सभाओं आदि की कृपा से संगीतज्ञ, साधारण व्यक्तियों के हृदय में थोड़ी जगह तो पा भी लेते हैं। वे अब जमींदारों तथा राजा-रजवाड़ों के बन्धन से भी मुक्ति पा गए हैं। छपाई-विज्ञान की कृपा और चित्ररसिकों के अनुराग के कारण चित्रकार भी अब कुछ हद तक आजाद हैं। पराधीनता अगर किसी की नहीं मिटी है तो वह बेचारा मूर्तिकार ही है। दीनबन्धु को इस बात का कष्ट था—हमारे देश के मूर्तिकार को अभी भी बहुत अरसे तक पैसे वालों की अभिरुचि तथा राजशक्ति की कृपा पर निर्भर रहना पड़ेगा।

दीनबन्धु इन बातों पर दुख प्रकट करते, पर अपने काम के मामले में कभी चुप नहीं बैठते। काम-काज के बीच-बीच में गुरु शिष्य के बीच इस विषय पर चर्चा चलती। कभी-कभी दीनबन्धु जानना चाहते, पश्चिम के लोग जिस आग्रह से कला-संग्रहालय में जाकर मूर्तिकला का रस लेते हैं, बहुत देर तक खड़े-खड़े मूर्तिकार के अव्यक्त भावों को उसकी भंगिमाओं के जरिए जिस आह्लाद से समझने की कोशिश करते हैं, उसका थोड़ा-सा भी भाव हमारे देश में क्यों नहीं है? फिर खुद ही बोलते, 'पत्थर, मिट्टी और धातु के इस खेल में आम आदमियों की रुचि होगी भी कैसे? उन्हें बहलाने के लिए तो ईश्वर के स्टुडियो में रक्त-मांस के गढ़े जीवित गुड्डे और गुड़ियां जो हैं!'

लगता है दीनबन्धु की इस आत्म-वेदना का जरूर तर्कसंगत कारण रहा होगा।

उनकी स्मृति की तिजोरी में न जाने और भी कितनी कहानियां इकट्ठी थीं—अभिनेत्री रंजना बोस, वैज्ञानिक सुगत चक्रवर्ती, समाज-सेविका मिसेज पुंटू सेन और ऐसे अनेक। पर इनकी कहानियां तो आपने पढ़ी होंगी और आगे भी पढ़ेंगे। इस बार तो थोड़ा कष्ट कर दीनबन्धु की ही बातें सुनिए। मैं इस मूर्तिकार के जीवन के कई स्मरणीय पलों को आपके सामने रखना चाहता हूं।

इससे शायद यह प्रमाणित हो जाए कि दीनबन्धु अपने स्वाभिमान के

कारण हम लोगों से दूर हट गए थे—इसी अभिमान के कारण ही उन्होंने साधारण आदमी के विचारालय में अपना पक्ष नहीं पेश किया था। इससे शायद कम से कम इतना ही प्रमाणित हो जाए कि वस्तुत: हम लोगों के मन में मूर्तिकार के जीवन और उसकी साधना के प्रति श्रद्धा और सहानुभूति का अभाव नहीं है और हम बहुत-सी मीठी-मीठी कहानियों के लालच को छोड़कर उनके सुख-दुख का साझी बनने को राजी हैं।

कहाँ से शुरू की जाए इस मूर्तिकार की कहानी! दीनबन्धु का एक अतीत है। उस अतीत ने आज भी दीनबन्धु को गुत्थियों में उलझा रखा है। शिल्पी दीनबन्धु को हर समय यह बात याद भी नहीं रहती। उनके भाग्य की दुहाई है कि उन्हें सब-कुछ हमेशा याद नहीं रहता, नहीं तो दीनबन्धु या तो पागल हो जाते या स्मृति के धुँधले चश्मे में यादों के बादलों से घिरे उन दिनों की ओर टकटकी लगाए ताकते रहते।

पर माधवी ऐसा कर सकती है। उसके लिए भले ही यह अच्छी बात न हो, पर अस्वाभाविक भी नहीं। पर दीनबन्धु ?

दीनबन्धु के लिए यह कतई सम्भव नहीं। उन पर बहुत सारी जिम्मेदारियाँ हैं। उनके पास आखिर समय ही कितना है ? यही कुछ चन्द-एक साल! और सामने है कितना काम!

इसलिए दीनबन्धु साधना में जुटे रहना चाहते हैं। इसलिए हमारे यह प्रतिभा-सम्पन्न मूर्तिकार हमेशा काम में डूबे रहते हैं। फिर भी कभी-कभी ऐसे क्षण आते जब पत्थर भी पानी में तैरते-से दिखाई देते और अतीत के टुकड़े वर्तमान के कर्म-प्रवाह को न मानकर अपनी आजादी की घोषणा करते सामने आ खड़े होते।

मन की ऐसी हालत में दीनबन्धु बेचैन-से हो जाते। स्टुडियो से निकलकर घर के पीछे जो बड़ा-सा चबूतरा था, वहीं आकर बैठ जाते।

दीनबन्धु वहाँ आखिर करते क्या थे ? दीनबन्धु के जीवन के किसी एक पल के छोर को पकड़कर चलिए न! हम भी वहीं चलते हैं। कलाकार दीनबन्धु के साथ हमारी पहली भेंट वहीं पर हो। आइए, हम दीनबन्धु की कार्यशाला में चलें।

बाहर से देखने से लगता है कोई छोटा-मोटा फिल्मी स्टुडियो है। शहर के किसी कोने में नदी के किनारे यह पुरानी कोठी शायद किसी नारी-लोभी, मौजी जमींदार का प्रमोद-भवन था। धनी भूस्वामी अत्यन्त रसिक थे। इस मकान में घुसते ही दीवारों पर जमी घनी काई से अस्पष्ट अक्षरों को पढ़ने से ही मालूम पड़ जाता है—इस घर का नाम है—'चित चकोर।'

दूर से स्टुडियो के लाल रंग का टीन का छप्पर दिखाई पड़ता है। फाटक पार कर घुसते ही एक छोटा-सा कमरा है। एक-दो अधेड़ उम्र के के सोफे पड़े हैं। उसके बाद ही स्टुडियो है—मानो छोटा-सा कोई कारखाना हो।

स्टुडियो के फर्श पर पत्थर के कई नरमुंड पड़े हैं। उनमें से कई हमारे परिचित हैं। जननेता, शहीद, योद्धा, धर्मगुरु, वक्ता, लेखक, कवि, उद्योगपति, व्यापारी और भी ऐसे अनेक चेहरे दीनबन्धु की प्राणहीन नगरी में में मौन नागरिकता लिए हुए परम शान्ति में वास कर रहे हैं।

पत्थर नहीं—ये मूर्तियाँ प्लास्टर की बनी हुई हैं और सफेद प्लास्टर पर धूल की परत ने उन्हें अजीब-सी मटमैली शक्ल दे दी है। नामी लोगों की इस भीड़ को पार करने पर हाल में कोने पर एक मंच-सा बना हुआ है।

मंच पर किसी एक के बैठने लायक जगह बनी हुई है। उसके पार्श्व में लकड़ी का एक स्टूल जैसा है, जिसे कलाकार लोग 'स्टैण्ड' कहा करते हैं। मंच के ऊपर कई बत्तियाँ हैं। नामी होटलों के सदा नम्र और विनय से झुके खिदमतगारों की तरह दो-एक घुमावदार बत्तियाँ स्टैण्ड के बिलकुल पास हैं। जैसे भी हो, बगल से, सामने से, पीछे से नीचे की तरफ, या ऊपर की तरफ उन बत्तियों को जरूरत के अनुसार जिस भी तरफ और जिस वस्तु को आलोकित करना हो, किया जा सकता है।

कुछ दूर पर मूर्तिकार के लिए और भी एक स्टैण्ड है। इसका इस्तेमाल सम्भवतः दीनबन्धु के शिष्य करते हैं। मंच के उस तरफ एक काला पर्दा लगा है। उसे खींच देने पर इस विशाल स्टुडियो को दो भागों में बाँटा जा सकता है और इस तरह से पिछला हिस्सा बाहरी लोगों की दृष्टि

से अलग कर दिया जा सकता है।

पर्दे के उस तरफ भी कई मूर्तियाँ सीधी या मुँह के बल पड़ी रहती हैं—मानो सौ-सौ साल पहले के किसी संग्रहालय को अभी तुरन्त खोजा गया है। सिर्फ आदमी ही नहीं, जंगली जानवर, यहाँ तक कि स्वर्ग के देवता भी किसी अलौकिक जादू के पत्थर बनकर यहाँ किसी ईश्वर-पुत्र की प्रतीक्षा में पड़े हैं।

उसके बाद भी थोड़ी-सी जगह है, जहाँ दोनों ओर दो दरवाजे हैं। एक दरवाजे को खोलते ही एक छोटा-सा मकान दिखता है। उसके सामने ही अमरूद का एक पेड़ है। बरामदे से हाथ बढ़ाकर अमरूद तोड़े जा सकते हैं।

बरामदे को पार करते ही बैठक है। इस समय वहाँ एक अजीब किस्म की चुप्पी है। धनी जमींदार के लड़के के इस प्रमोद-भवन में निश्चय ही कभी बहुत-से लज्जाहीन नाटक खेले गए होंगे। जवान नर्तकियों और सुन्दर गायिकाओं ने शराब में धुत मालिक तथा उसके दोस्तों के मनोरंजन की कोशिश में रात पर रात जिस तरह से बेहिसाब शोर-गुल मचाया होगा, उसी के दण्डस्वरूप आज यहाँ अस्वाभाविक स्तब्धता है।

अन्दर की तरफ और भी कमरे हैं। पर इस समय वहाँ जाकर हम समय नहीं बर्बाद करेंगे। इससे तो अच्छा होगा कि हम स्टुडियो के दूसरे दरवाजे से उत्तर की तरफ थोड़ा झाँक लें।

दरवाजे को खोलते ही पहले तो चौंकना पड़ता है। यह कहाँ आ गए? कोई पुराना परित्यक्त कब्रिस्तान है क्या?

थोड़ी-सी जमीन दिखाई देती है। कोई छोटा-मोटा फुटबाल खेलने का मैदान भी हो सकता है, पर कोई देखभाल न होने के कारण हरी-हरी घासों से भर गया है—मानो कोई हरा गलीचा बिछा हुआ है। गलीचे की बुनाई बहुत बढ़िया नहीं कही जा सकती। कहीं-कहीं किसी-किसी घास की पत्ती ने सर ऊँचा उठा लिया है, तो कहीं घास की कोई पत्ती जमीन में मुँह छुपाए पड़ी है।

कुछ पत्थर के टुकड़े इधर-उधर बिखरे पड़े हैं, मानो ये सुप्त हैं या मृत हैं।

ऐसे ही किसी एक निष्प्राण पत्थर पर दीनबन्धु चुपचाप बैठे हैं। अचानक देखने पर लगेगा यह भी कोई मूर्ति ही है। एक किनारे सफेद संगमरमर के पत्थर पर किसी मनमौजी सृष्टिकर्त्ता ने काले पत्थर की मूर्ति का निर्माण किया है, जिसका नाम लेते ही दीनबन्धु झुककर प्रणाम करते हैं। ऐसा लगता है मानो फ्रेंच शिल्प-गुरु रोंदा ने किसी अदृश्य शक्ति के आदेश से आधी शतक के बाद भी अपनी कब्र से उठकर आकर हमारे इस भारतीय शहर में एक और अनश्वर 'थिंकर' (रोंदा की प्रसिद्ध कृति का नाम) को पत्थर में गढ़ डाला है।

दीनबन्धु ने न जाने कितनी बार अपने शिष्य को रोंदा के उस चिन्तन-शील मानव की तस्वीर दिखलाई है, चारों तरफ से खिंची गई चार तस्वीरें —सामने का दृश्य, बाईं तरफ का दृश्य, दाहिनी तरफ का दृश्य, फिर पीछे का दृश्य।

अभी पत्थर के टुकड़े पर दीनबन्धु भी कुछ उसी मुद्रा में बैठे हुए थे। कोहनी मुड़ी हुई, हथेली पर चिबुक टिकाए बैठे थे। जांघ पर कोहनी टिकी थी। चाकू के फलक-जैसी शुक-नासिका पर सुबह की सुनहरी धूप पड़ रही थी। दूसरी तरफ छाया थी।

प्रकाश और छाया के बिम्ब मूर्ति पर पड़ रहे थे। दीनबन्धु अक्सर रोंदा की बात करते थे। रंगों का खेल दिखलाने का अधिकार केवल चित्र-कार का नहीं है। सफेद संगमरमर, काला पत्थर और यहां तक कि कांसे पर भी बड़ी आसानी से कई रंगों की छाया लाई जा सकती है। दीनबन्धु की पाषाण प्रतिमावत मुद्रा अब थोड़ी-सी हिली। उन्हें कल की घटनाएँ याद आ रही थीं।

दीनबन्धु को तब तक उस घटना का आभास भी नहीं था। स्टुडियो के सामने सरकारी गाड़ी प्रतीक्षा कर रही थी। विद्यार्थी देवीदास काफी देर से गाड़ी के अन्दर बैठा था और दीनबन्धु स्वयं कपड़े-वपड़े पहनकर तैयार होकर मोटर का दरवाजा खोलकर प्रतीक्षा कर रहे थे। वह सोच रहे थे, माधवी शायद अभी तक सज-धज ही रही होगी। रामायण के युग से लेकर अब तक दुनिया की कौन-सी लड़की तैयार होकर ठीक समय पर

पति के साथ निकल सकी है ? लड़कियाँ देर करेंगी ही।

देवीदास ने जब आड़ी नजर से घड़ी देखी, दीनबन्धु समझ गए कि बहुत देर हो रही है। माधवी को जल्दी करने के लिए कहना ही पड़ेगा।

लेकिन थोड़ी देर पहले यह काम माधवी ने ही किया था। दीनबन्धु अपने स्टूडियो में शिष्य के साथ शिल्प-साधना में डूबे हुए थे। पत्थर पर छेनी और हथौड़े की लगातार छिप-छिप, झिप-झिप की आवाजें बरस रही थीं। मैदे की तरह सफेद महीन संगमरमर की धूल ने उड़-उड़कर गुरु-शिष्यों को पके बालों वाले बूढ़ों में बदल डाला था। बीच-बीच में छेनी की चोट से पत्थर से ऐसी चिनगारी निकलती कि यदि मन हो तो सिगरेट भी जलाई जा सकती थी। अन्दर आते ही माधवी ने कहा था, 'तुम लोग अब तैयार हो लो।'

माधवी की बातों से दीनबन्धु को ख्याल हुआ कि समय हो चुका है। काम के समय दीनबन्धु हाथ में घड़ी नहीं बांधते। घड़ी कितनी ही शाक-प्रूफ क्यों न हो, पत्थर काटने वाले आदमियों के हाथों में कलाई घड़ी दस महीने भी नहीं टिकती। दिन में हजार बार चौंक-चौंक कर अन्त में उसका हार्टफेल हो ही जाता है।

दीनबन्धु आधे बाजू और गोल गले की मोटी बनियान पहनकर काम कर रहे थे। सर पर से सफेद धूल झाड़ते हुए उन्होंने जवाब दिया, 'अभी तैयार होता हूँ।'

माधवी की सजग दृष्टि से दीनबन्धु अपने को बचा नहीं पाते थे, 'इतनी सारी टोपियाँ बनाकर दी हैं, पहली क्यों नहीं ?' माधवी ने सवाल कर ही दिया। इस प्रश्न का जवाब देने की जरूरत नहीं थी। एक मीठी-सी हंसी बिखेर दीनबन्धु ने उस समय के लिए काम बन्द कर दिया।

स्नानघर से निकलते ही दीनबन्धु ने देखा, माधवी ने दूल्हे की पोशाक का इन्तजाम कर रखा था। सुनहरे किनारे की सफेद धोती में चुन्नट डाल कर रखा था। पोशाक के मामले में दीनबन्धु की राय नहीं चलती थी। बहुत वर्षों से छोटे बच्चे की तरह बिना प्रतिवाद, दीनबन्धु इस मामले में पत्नी का हुक्म मानते आए थे। उन्होंने धोती पहन कर शरीर पर पहले बनियान डाली, फिर दूध-सा सफेद तसर सिल्क का कुर्ता पहना। पर इस

पर भी छुट्टी कहाँ मिलने वाली थी ? गर्दन पर रखने के लिए माधवी ने सफेद चद्दर तह लगाकर रख छोड़ी थी।

पैर में न्यूकट जूते डालकर दीनवन्धु ने शीशे में अपने चेहरे को देखा। फिर सोचा, माधवी से थोड़ा मजाक ही कर लें। सोचा कि कहें, माथे पर चन्दन का तिलक भी लगा दो। वस लोग कहेंगे, वुड्ढा चला फिर से शादी रचाने।

पर शिप्रा के सामने मजाक करने से माधवी खामखा बुरा मान जाएगी। इसलिए दीनवन्धु ने सोचा वह कमरे में जाकर चुपके से माधवी को यह वात सुना जाएंगे।

लेकिन माधवी थी कहाँ ?

शायद उसका सजना-संवरना अव भी कुछ वाकी था। यह सोचकर दीनवन्धु वाहर आकर गाड़ी के सामने प्रतीक्षा कर रहे थे। पर माधवी अव तक नहीं आई थी। अव तो जाकर देखना ही पड़ेगा।

अमरूद का पेड़ पार कर अन्दर जाकर वाईं तरफ ड्रेसिंग-रूम में झाँका दीनवन्धु ने। पर कहाँ ? माधवी तो वहां भी नहीं थी।

सोने के कमरे का दरवाजा भिड़ा हुआ था। खिड़की से झाँककर देखने के वाद दीनवन्धु ने नाराजगी से भौं सिकोड़ लीं। माधवी अव भी विस्तर पर पड़ी थी।

नरम विस्तर पर माधवी मुंह वन्द किए उलटी पड़ी थी। माधवी का काला जूड़ा (अव भी उसके सर पर घने वाल थे) समतल जमीन पर पर्वत की तरह ऊँचा खड़ा था।

दीनवन्धु ने माधवी को पुकारा। पर माधवी उठी नहीं। मुंह उठाए विना ही वोली, 'तुम जाओ। मुझे माफ करो। मेरी तवियत ठीक नहीं है।' तवियत उसकी खराव नहीं थी। यह सिर्फ एक वहाना था, इतना समझने की वुद्धि ईश्वर ने दीनवन्धु को दे रखी थी।

एक वार तो उनकी इच्छा हुई कि वह माधवी को याद दिला दें कि आज का दिन उनके जीवन में कितना स्मरणीय होने जा रहा है। ऐसे दिन में वह माधवी के साहचर्य की आशा तो कर ही सकते थे। पर ये वातें तो माधवी खुद भी भली-भाँति जानती थी। आज का दिन दीनवन्धु के जीवन

मे अचानक ही नहीं आया था।

अभिमान से दीनबन्धु का गला रुंध आया। किसी तरह से वह बोले, 'अच्छा तो मैं फिर चलता हूँ।'

माधवी जब अपनी इच्छा से ही नहीं आना चाहती तो वह क्यों मनाए ? किसी की बार-बार मिन्नतें करना दीनबन्धु के स्वभाव में नहीं।

माधवी क्यों नहीं आई, गाड़ी के अन्दर पाषाण की तरह निश्चल होकर दीनबन्धु यही सोच रहे थे। ऐसे दिन में, ऐसे स्मरणीय क्षण में, पति के साथ का विशिष्ट आसन पाने के लिए कौन-सी पत्नी उत्सुक नहीं होती !

'मास्टर साहब,' देवीदास ने दीनबन्धु को पुकारा। दीनबन्धु गाड़ी में सीधे होकर बैठे। पूछा, 'कुछ बोल रहे हो ?'

'आप कुछ सोच में हैं ?'

'नहीं। क्या सोचूंगा ? यह तो सोचने का समय नहीं है,' कहकर वह प्रश्न को टाल गए।

चिबुक से हाथ हटाकर दीनबन्धु ने सर का पसीना पोंछा।

'मास्टर साहब, हम लोग पहुँच गए हैं,' देवीदास ने दीनबन्धु को सचेत करते हुए कहा।

'ठीक है,' कहकर दीनबन्धु गाड़ी से उतरे।

माधवी अभी साथ होती तो वह कितने खुश रहते।

सामने की पंक्ति में एक कुर्सी पर उन्हें आदरपूर्वक बैठाया गया। आज के स्मरणीय उत्सव में दीनबन्धु की एक खास भूमिका थी, इस बात को कार्यकर्ता कैसे भूल सकते थे।

सभा का कार्यक्रम आरम्भ हो गया था। उद्घाटन-गीत के बाद एक-दो भाषण हुए, पर दीनबन्धु उन्हें ध्यान से [illegible] रहे थे। [illegible] लोक-सेवा-आयोग के [illegible] दीनबन्धु [illegible] नाम घोषित होने वाला था।

माननीय मुख्यमंत्री अब मंच पर [illegible] उन्होंने घोषणा की, 'आज के [illegible]

कि वह हमारे पितृतुल्य उस महामानव की मूर्ति का अनावरण करें।'

इसके साथ ही सबकी नजर चम्पई रंग के सिल्क के पर्दे में छिपी हुई मूर्ति पर पड़ी। मुख्यमंत्री के अनुरोध पर महामहिम राष्ट्रपति जी उठे। फोटोग्राफरों ने खटाखट फोटो खींचना शुरू किया। थोड़ी ही दूर पर सरकारी दूरदर्शन का कैमरा भी सजग था।

मधुर मुस्कान के साथ राष्ट्रपति जी ने टेबल के ऊपर के बिजली का बटन दबाया। फ्लैश बल्बों की चमक और चलचित्र कैमरों के प्रकाश को अमान्य कर पर्दा बड़ी उत्कंठा के बीच धीरे-धीरे सिमटता गया। पर्दा पूरा उठ जाने के बाद भी थोड़ी देर तक हाल में चुप्पी छाई रही।

आज के अनुष्ठान के जो मुख्य अतिथि थे, वह सिर्फ राष्ट्र के प्रधान ही नहीं थे, प्रज्ञा और पांडित्य में भी वह सबसे श्रद्धेय थे। मोटे चश्मे के अन्दर से उनकी अनुभवी आंखों ने मानो कोई आश्चर्यजनक वस्तु खोज की थी। उनकी ओजपूर्ण वाणी, लाउडस्पीकर से होकर चारों तरफ सुनाई पड़ने लगी। हजारों लोगों ने भी उसी क्षण अपनी राय दे दी और चारों ओर उल्लास का गुंजन होने लगा।

पहले-पहल पितृतुल्य महामानव, जिनकी मूर्ति का अनावरण हुआ था, उनका जय-जयकार हुआ। इस मरणासन्न जाति के हृदय में बल, मुंह में वाणी और बाजू में शक्ति इन्होंने ही दी थी। सभी एक-स्वर से बोल रहे थे, 'अपूर्व! अद्भुत! हमारे स्वर्गीय महामानव को इतने आश्चर्यजनक ढंग से कौन इस दुनिया में वापस उतार लाया है?'

अभिभूत राष्ट्रपति ने शिल्पी को देखने का आग्रह किया। जनता ने भी उल्लास के साथ मूर्तिकार को देखने का आग्रह किया।

दीनबन्धु का शरीर कांप रहा था। उनके मन में बड़ा संशय था। उनकी कल्पना के महामानव के साथ इस विशाल देश के करोड़ों आदमियों की कल्पना का मेल बैठेगा या नहीं? जिस दृष्टि से उन्होंने महामानव को देखना चाहा था, क्या उपस्थित जनता भी उन्हें उसी रूप में देखना पसन्द करेगी?

आज की जयध्वनि दीनबन्धु के शरीर में बिजली पैदा कर रही थी। उन्हें लगा वह इसी क्षण टूटकर चकनाचूर हो जाएंगे। वह मानो चलने

की शक्ति भी खो रहे थे। पर राष्ट्रपति ने स्वयं आगे बढ़कर दीनबन्धु के हाथ पकड़ लिए और मंच पर माइक के सामने उन्हें लाकर बोले, 'यही हैं आप लोगों के चिरशिल्पी—आप लोगों की तरफ से मैं उन्हें हृदय से लगा रहा हूँ।' दीनबन्धु को राष्ट्र-प्रधान ने आन्तरिक भाव से गले लगाया। जनता ने फिर से जय-जयकार की तुमुल ध्वनि की।

राष्ट्रपति अभिभूत होकर बोले, 'मैं कैसे इस शिल्पकला का वर्णन करूँ? फ्रांस के कला रसिक मन्त्री आंद्रे मालरो यदि यहां मौजूद होते तो वह शायद सफलतापूर्वक कर भी सकते थे। मुझे तो सिर्फ ऐसा लगता है कि यह कोई काम्य स्वप्न है। लगता है जैसे हमारी प्रार्थना से अभिभूत होकर हमारे स्वर्गीय पितृव्य सचमुच ही इस धरती पर फिर से उतर आए हैं।'

राष्ट्रपति बोले, 'मुझे बहुत बार राष्ट्रपिता के करीब आने का मौका मिला था। मैंने उनकी अनेक तस्वीरें भी देखी हैं, पर उनके देहावसान के बाद आज पहली बार मुझे लगा कि मैं उन्हें पूर्ण रूप से ग्रहण कर पा रहा हूँ। हमारे राष्ट्रपिता की वाणी और उनका जीवन जिस तरह आने वाले कल में भी मानवमात्र को सच्ची राह दिखलाएगा, उसी तरह युग-युगान्तर तक यह मूर्ति हमारी भावी पीढ़ियों को अनुप्राणित करेगी।'

दीनबन्धु सबकी कुतूहल भरी दृष्टि के सामने इस तरह से कभी खड़े नहीं रह सकते थे। खासकर वह अपने अतीत को कैसे भूल जाते? पर चाहने पर भी वह यहाँ से भाग नहीं सकते थे।

सभा के समापन पर राष्ट्र के प्रधान-प्रधान व्यक्तियों ने उन्हें घेर लिया था। ये सभी एक स्वर से कह रहे थे कि महामानव की यह प्रतिमा दीनबन्धु के श्रेष्ठ शिल्प का कीर्तिमान मानी जाएगी।

जिज्ञासा थी—'इस काम में कितना समय लगा?'

दीनबन्धु अपनी दृष्टि को अन्तर्मुखी बनाने की कोशिश करते हुए बोले, 'समय तो लगा ही है। तीन साल कैसे कट गए, पता ही नहीं चला।'

'तीन साल ही क्यों, इस मूर्ति को बनाने में अगर बारह साल भी लग जाते तो भी कोई आश्चर्य की बात नहीं होती।' किसी ने फिर पूछा, 'इस मूर्ति को थोड़ी देर तक देखने के बाद ऐसा लगता है जैसे हमारे महामानव

कुछ पूछना चाह रहे हैं।'

दीनबन्धु खुश होकर बोले, 'मुझे लगता है मेरा परिश्रम व्यर्थ नहीं गया। जो सिर्फ मेरे स्वप्न में था, वह अब यथार्थ रूप ले सका है। महा-मानव जैसे सच ही कुछ पूछना चाह रहे हैं!'

कैमरे के फ्लैश कई बार चमक उठे। किसी पत्रकार ने पूछा, 'प्रेरणा के बिना क्या ऐसा कीर्तिमान सम्भव है?'

दीनबन्धु का उत्तर था, 'हमारे अंधेरे जीवन को जिन्होंने प्रकाश की किरणों से आलोकित किया, इस पराधीन देश को मुक्ति के मन्त्र से अनु-प्राणित कर हमें स्वतन्त्रता के द्वार तक जिन्होंने पहुँचाया, जिन्होंने हमारे सभी पाप, हमारी सारी गलतियों, सारी नीचता को अपने शरीर में धारण कर हमें अमृत-पथ का राही बनाना चाहा, उनके शरीर की तो कल्पना से ही किसी शिल्पी का शरीर रोमांचित हो उठता है। प्रेरणा सहज ही रसने लगती है।'

किसी कला-आलोचक ने राय प्रकट की, 'हम राष्ट्रपिता की और भी मूर्तियाँ भिन्न-भिन्न नगरों में देख चुके हैं, पर आज पहली बार ऐसा लगा जैसे वह कुछ पूछना चाहते हैं। क्या हैं वह प्रश्न?'

दीनबन्धु थोड़े सकपकाए। थोड़ी देर सोचने के बाद संकुचित होकर बोले, 'काल के विचारालय में खड़ा होकर आदमी कितना-कुछ पूछ सकता है। शायद युग के साथ प्रश्न भी बदल जाएँ। अभी जो प्रश्न उनके चेहरे पर हैं, हो सकता है आने वाले युग में ये ही प्रश्न अंकित न रहें। देशवासी कल हमारे ही पर्द [illegible] पर पढ़ेंगे।'



दीनबन्धु जब घर लौटे, माधवी बिस्तर से नहीं उठी थी। सोई हुई माधवी के गम्भीर चेहरे की तरफ देखकर उसके ऐसा करने का कारण दीनबन्धु ढूंढ कर भी नहीं पा सके।

इसके पहले भी तो दीनबन्धु जब किसी अनुष्ठान से लौटते थे, तब माधवी न केवल दौड़कर दरवाजा खोलती थी, बल्कि पति के कन्धे पर से प्यार से चादर उतारती थी, तरह-तरह के सवाल पूछती थी। दीनबन्धु जवाब देते-देते हांफ उठते थे।

हाल की ही बात है जब राष्ट्र के इस विरेह की मूर्ति बनाने का भार दीनबन्धु को सौंपा गया था, तब माधवी ने एक काण्ड ही कर दिया था। इस उम्र में भी माधवी इतनी चंचल हो उठेगी, दीनबन्धु सोच ही नहीं सके थे, 'मैं आज कुछ नहीं सुनूंगी!' कहकर माधवी ने करीब आकर पति को चूम लिया था।

दीनबन्धु को लगा माधवी की तुलना में वह बहुत बूढ़े हो गए हैं। पति की गोद में सिर छिपाकर माधवी बोली थी, 'अरे यार, याद भी है। मैंने बहुत दिन पहले तुमसे क्या कहा था? दूसरों की तो बात ही छोड़ो, तुम खुद भी तो यही सोचते थे कि मैं गलत-सलत बक रही हूं!'

उसके बाद जिस दिन दीनबन्धु ने महामानव की मूर्ति का मिट्टी का माडल बनाया था, तब उन्होंने सिर्फ माधवी को ही यह बात बताई थी। माधवी बोली थी 'मैं तुम्हें नहीं छोड़ूंगी। तुम्हें मुझे बताना ही पड़ेगा कि महामानव के चेहरे पर तुमने कौन-सा प्रश्न उत्कीर्ण किया है?'

'प्रश्न तो हर युग में बदलता रहता है,' दीनबन्धु बोले थे।

'बदल सकता है, पर आसन्न प्रश्न क्या है?' माधवी ने जानना चाहा था।

'सोचा था। छुपाकर ही रखूँगा। किसी को नहीं बताऊँगा। मूर्त्ति को देखकर दर्शक खुद ही प्रश्न को ढूंढ़ निकालेंगे। पर मूर्त्तिकार की प्रिया से कुछ गोपन रखना मुश्किल दिखता है।'

'छुपाने मैं दूँगी ही नहीं!' पति की तरफ देखती हुई माधवी बोली थी।

'प्रश्न बहुत पुराना है। शायद तुम्हारे ध्यान में नहीं रहा, लेकिन बहुत दिन पहले मैंने तुम्हें एक किताब से कुछ पढ़कर सुनाने के लिए कहा था, 'भगवान, तुमने हर युग में, इस दयाहीन संसार के लिए अपना दूत भेजा है।'

स्टूडियो के मंच पर आँखें मूंदकर बैठे दीनबन्धु ने उस दिन माधवी को कहा था, 'वे सब क्या कह कर गए हैं?'

'कह गए हैं सबको क्षमा करना, सबको प्यार करना। दिल से ईर्ष्या और द्वेष निकाल देना,' माधवी ने उत्तर दिया।

दीनबन्धु गम्भीर हो उठे। बोले, 'यह सिर्फ टैगोर की कविता में पढ़ी हुई बात नहीं है, माधवी! मैंने देखा है अज्ञात दुश्मन रात के अन्धेरे में असहाय लोगों को खत्म कर देते हैं।' दीनबन्धु अपने-आपमें बोल रहे थे, 'मेरे महामानव इसीलिए प्रश्न कर रहे हैं— जिन लोगों ने तुम्हारी हवा को जहरीला बनाया है, जो लोग तुम्हारे प्रकाश को अन्धकार में बदल देना चाहते हैं, क्या तुमने उन्हें क्षमा किया है, क्या तुमने उन्हें प्यार किया है?'

दीनबन्धु थोड़ी देर रुके। फिर बोले, 'जिनके पास आँखें हैं वे समझ सकेंगे कि मैंने एक चीज छोड़ दी है। आँखों में आँसू लिए महामानव जो पूछना चाहते हैं, वही मैंने छोड़ दिया है। कारण और अकारण नरम स्वभाव का आदमी आँसू ढुलका कर दुनिया के दुख को बढ़ाता ही है। हमारे महामानव आँखों से आँसू गिराएँ, यह मैं नहीं चाहता।'

घर लौटकर माधवी को देखकर दीनबन्धु को लगा उनकी गैर-

मौजूदगी में उसने बहुत सारे आंसू लुढ़काए हैं। आंसुओं को दीनबन्धु अशुभ मानते थे। ऐसे शुभ दिन क्या किसी की पत्नी आंसू गिराकर अशुभ को निमन्त्रण देती है? कौन जाने, माधवी क्यों इस तरह स्वयं को और साथ में पति को इस तरह कष्ट पहुंचा रही थी।

स्वाभिमानी दीनबन्धु ने तय कर ही लिया कि वह समस्या की गहराई में नहीं जाएंगे। ऐसे विशेष दिन में भी माधवी यदि अपनी ही किसी व्यक्तिगत बात को अधिक तूल देती है तो खामखा वे क्यों उसकी बातों में अपना सर खपाएं?

लेकिन ठीक इसी समय उनका मन किसी के साथ अपनी खुशी बांटने का भी कर रहा था। और कोई दिन होता तो माधवी खुद ही सारी रात गप मारती। पति को सोने ही नहीं देती।

आज की माधवी बिस्तर में उनके साथ सोकर हनीमून के उच्छ्वास से उनके साथ बातें करेगी, यह आशा दीनबन्धु खुद भी नहीं करते। पर जीवन के एक ऐसे क्षण में पत्नी की प्रशंसा, उसका अनुराग, उसका प्रश्रय कुछ भी नहीं पाएंगे, यह वह कैसे सोच सकते थे?

उनका सर दर्द से टनटनाने लगा। नाइट-लैम्प बुझाकर दीनबन्धु सो गए। एक बार तो उन्हें ऐसा लगा जैसे माधवी जानबूझ कर उनकी अवहेलना कर रही है।

दीनबन्धु की इच्छा हो रही थी कि वह माधवी को उठाकर पूछें, 'क्या मुझे इतना भी अधिकार नहीं कि आज के दिन तुमसे इससे अधिक अच्छे व्यवहार की अपेक्षा करूं? माधवी, तुम क्या भूल चुकी हो कि तुम क्या थी? कैसे तुम शिल्पी दीनबन्धु की पत्नी बनी थी?'

इसके बाद सभी दु:खों को हरने वाली निद्रा देवी ने ही आकर उस रात के लिए दीनबन्धु की रक्षा की थी।

सुबह जब उनकी नींद खुली तब उन्होंने देखा, माधवी दूसरे दिनों की तरह चाय लेकर आई। चेहरा उसका तब भी गम्भीर था। उसके चेहरे में कल के दुख की छाप स्पष्ट थी। दीनबन्धु ने माधवी की तरफ ठीक से देखा ही नहीं। अपनी तरफ से कोई बात भी नहीं उठाई। उन्होंने तय

जवाब दिया।

'तुम्हें कोई आपत्ति तो नहीं ?' दीनबन्धु आश्वस्त होना चाहते थे।

'आपत्ति रहने पर भी चलेगा कैसे ? इसके बदले में तो आप मुझे रुपये देंगे !' लड़की निःसंकोच कह गई।

'यह काम जितना आसान दिखता है, उतना है नहीं। चुपचाप बैठे रहने में भी धैर्य की जरूरत पड़ती है।' दीनबन्धु लड़की को सतर्क करना चाह रहे थे।

'मैंने पहले कभी मॉडल का काम किया नहीं है, लेकिन मैं पूरी तरह चेष्टा करूँगी।' लड़की ने कहा।

पीछे की तरफ बत्ती को बन्द करते हुए दीनबन्धु ने पूछा, 'एक बार आकर भागोगी तो नहीं। जितने दिन मुझे जरूरत पड़ेगी उतने दिन आ सकोगी न ?'

लड़की ने 'हां' भरते हुए सिर हिलाया। दीनबन्धु जानते थे वह मान जाएगी। अवश्य ही अभाव में होगी।

दीनबन्धु ने हीटर पर पानी रखा। स्टूडियो में बैठ कर वह काफी या चाय बनाकर पीते थे।

'तुम क्या लोगी ? चाय या काफी ?

लड़की कुण्ठित हो रही थी।

'शर्म की कोई बात नहीं। इस समय तुम हमारी सम्मानित अतिथि हो। थोड़ी देर बाद हमारी सहयोगिनी बन जाओगी। हम जो खाएंगे या पीयेंगे तुम भी वही खाओगी-पीओगी।'

'देवीदास, तुम ढांचा तैयार करो।' इसी प्रकार के ढांचे से मूर्ति की शुरुआत होती है। दीनबन्धु अपने लिए भी ढांचा बनाने लगे।

लोहे की सींक टेढ़ी करते हुए दीनबन्धु अब कुछ विशेष ही गम्भीर हो उठे। बोले, 'देवीदास, स्टुडियो का दरवाजा बन्द कर दो।'

काम के समय बाहर के आदमियों के लिए प्रवेश निषिद्ध है।

स्टुडियो की सारी तेज बत्तियां जल उठीं। देवीदास इसी बीच मिट्टी का लोंदा सान कर ले आया।

दीनबन्धु ने पूछा, 'तुम्हारा नाम ?'

लड़की बोली, 'रेखा!'

'रेखा। वाह! बड़ा अच्छा नाम है!'

दीनबन्धु अब आँखें बन्द कर मुँह से मन्त्रोच्चार करने लगे। देवीदास समझ गया कि मास्टर साहब विश्वकर्मा को प्रणाम कर रहे हैं और विश्व के सृष्टिकर्ता से आशीर्वाद की आकांक्षा कर रहे है। उसके बाद वह अपने गुरु को नमन करते हैं। इसके बाद कुछ और ही बन जाते हैं।

दीनबन्धु की आँखें कुछ बड़ी-बड़ी-सी हो गईं। इस दीनबन्धु को देखने पर वह कोई दूसरे लोक के आदमी मालूम देते थे। वह अब नि संकोच बोले, 'रेखा, अब तुम्हें वस्त्रहीन होना पड़ेगा। अगर मन हो तो कोने वाले उस कमरे में चली जाओ। वहाँ कपड़े वगैरह रखने के लिए अलगनी है।' दीनबन्धु लड़की की पीड़ा को समझ रहे थे। उसका लजीला अक्षत यौवन आरक्त हो रहा था।

'तुम्हें किसी बात का डर नहीं। यहा और कोई नहीं आएगा!' दीनबन्धु ने उसे आश्वासन दिया। लड़की कमरे के अन्दर चली गई।

कपड़े उतारने मे आखिर कितना समय लगता है। पर लड़की कुछ ज्यादा ही देर लगा रही थी। देवीदास जिस तरह बार-बार घड़ी की तरफ देख रहा था, उससे लग रहा था वह काफी खिन्न हो गया है।

पहले दिन स्त्री-मॉडलो के साथ ऐसा ही होता है। दीनबन्धु अपने लम्बे अनुभव से यह बात जानते हैं। उसके बाद सब ठीक हो जाता है। इतने वर्षों की इस साधना मे उन्होने कोई कम निर्वस्त्र औरतो को नहीं देखा था।

बहुत साल पहले एक और लड़की ठीक इसी तरह अपने जन्म-दिन की पोशाक में उनके सामने आने मे देर लगा रही थी। ठीक देवीदास की तरह ही दीनबन्धु भी अधीर हो उठे थे। शरीर के मामले मे आम लोग जो कुछ सोचते हैं, शिल्पी के दिमाग मे वे बातें नहीं होतीं।

लज्जा छोड़कर, हिम्मत बटोर कर निर्वस्त्र रेखा अब कमरे से बाहर आई। दीनबन्धु ने देखा, लज्जा से रेखा का शरीर रह-रहकर पेड की हरी पत्ती की तरह सिहर उठता था। उसने अपनी आँखें मूद रखी थं

दीनबन्धु रेखा को कुछ भी नहीं बोले। वह अपनी मर्जी की

खड़ी रही। उन्होंने सोचा, आवश्यकता पड़ने पर ही वह उसे मंच पर बैठने के लिए कहेंगे। हाँ, वह मंच सिंहासन ही तो था। इस मुहूर्त में किसी शिल्पी की साम्राज्ञी तो उसकी माडल ही होती है।

देवीदास भी रेखा की तरफ देख रहा था। दीनबन्धु धीरे से उससे बोले, 'देवीदास अच्छी तरह इसे पढ़ो। प्रत्येक मानव-शरीर ईश्वर द्वारा लिखा हुआ स्वयं में एक सम्पूर्ण महाकाव्य है। सच ही महाकाव्य है। सिर, मुँह, गला, उरोज, नाभि, नितम्ब सब इसके एक-एक सर्ग हैं—और इन सबको जोड़ कर प्रकृति ने अपरूप को रूप में संजोया है। 'फिर वह अपने शिष्य से बोले, 'मैं कुछ भी नहीं कहूँगा। तुम अपनी मर्जी से बनाओ।'

लज्जाशिता रेखा ने थोड़ा-सा चेहरा घुमा रखा था। दो अपरिचित पुरुषों की शिकारी दृष्टि के सामने वह अपने को असहाय हिरणी की तरह जितना सम्भव हो सकता था, छुपाना चाह रही थी।

दीनबन्धु ने प्रकाश की किरणों को रेखा के शरीर के निचले हिस्से से ऊपर के हिस्से की तरफ किया। अँधेरे में छुपा उसका चेहरा रोशनी में एकाएक जगमगा उठा। अनुभवी शिल्पी अब नारी-शरीर के छन्द को पकड़ने की कोशिश कर रहा था।

दीनबन्धु की आँखों में क्रमशः एक प्रोफाइल पकड़ में आ रहा था। केश के कुछ अंश, पीछे बँधा हुआ जूड़ा, कपाल, नाक, आँखें, ग्रीवा, बाजू और उरोजद्वय।

'चेहरा जरा-सा इस तरफ घुमा लो, 'दीनबन्धु ने निर्देश दिया। शरीर जैसे ही थोड़ा मुड़ा, निर्वस्त्र नारी के स्तन-युगल और भी उद्भासित हो उठे।

इस शरीर को हूबहू आकृति दे सकते थे दीनबन्धु। वह यह काम इतनी जल्दी कर सकते थे कि देवीदास विस्मय-विमूढ़ हो जाता था।

दीनबन्धु अपने छात्र को अक्सर याद दिलाते थे कि शिल्पी सृष्टिकर्त्ता की एक अक्षम प्रतिकृति होता है। ईश्वर ने जो भी कुछ दिया है, उसी को शिल्पी कुछ मिट्टी में, कुछ पत्थरों में, या कुछ धातु में ढालने की चेष्टा करता है; पर सृष्टिकर्त्ता ने जो चीज दी ही नहीं, उसे देने का अधिकार या स्वतन्त्रता किसी शिल्पी के पास नहीं होती।

देवीदास ने लकड़ी के स्टैण्ड पर ढांचा बैठा लिया था। ढांचे पर मिट्टी का पोतना भी शुरू हो चुका था। देवीदास मूर्ति बनाना चाहता था—सिर से लेकर वक्ष तक।

लेकिन दीनबन्धु अब भी उस माडल में अपने लिए किसी वक्तव्य को ढूंढ रहे थे। उन्होंने पास में रखे औजारों के बक्से को छुआ। मिट्टी से मूर्ति बनाने, फिर उस मूर्ति से प्लास्टर के माडल बनाने के औजार पास ही पड़े थे। उसके पास ही प्लास्टर में पत्थर पर खुदाई करने के औजार सभी रखे हुए थे। कितने ही तरह के थे ये औजार। प्रलेप देने का चाकू स्पैटुला, पतले, मोटे, भोंथे, तेज, नुकीले, तरह-तरह के औजार।

दीनबन्धु ने लकड़ी का चाकू हाथ में उठाया। पुरानी आदत के मुताबिक हज्जाम के उस्तरे की भांति हथेली में रखकर उसे तेज किया। आटे की लोई की तरह मुलायम मिट्टी से ढांचे को भरना शुरू किया।

लेकिन नजर उनकी रेखा पर ही थी। रेखा के नग्न शरीर में कोई खास आकर्षण नहीं था। रेखा की उम्र भी अधिक नहीं थी। पर अभाव और तंगी के कारण उसके शरीर में बसन्त का उत्सव शुरू नहीं हुआ था। इस माडल से देवीदास खुश नहीं हो पा रहा था। पर हमारे देश में 'मैडोना' तो माडल बनने के लिए अवश्य ही नहीं आएगी।

दीनबन्धु बोले, 'देवीदास, शरीर सिर्फ काव्य ही नहीं, छन्द भी है। हर शरीर की अपनी एक यति है। ईश्वर की सृष्टि में यति-भंग का दोष कभी नहीं होता। जब हम ठीक से नहीं देख सकते, तब उसमें अनुप्रास ढूंढने लगते हैं, पर हर आदमी का एक ऐसा कोण होता है, जहां से वह सुन्दर दिखेगा ही। उस दृष्टि को ढूंढ पाना ही हम शिल्पियों की आंखों की सबसे बड़ी उपलब्धि है।'

मिट्टी की इन छोटी-छोटी लोइयों को विदेश में मासेज कहा जाता है। ढांचे पर एक-पर-एक मासेज चढ़ा रहे थे दीनबन्धु। काम के इस पहले चरण में माडल विशेष दृष्टि से देखने की आवश्यकता नहीं पड़ती। मोटे तौर पर एक ढांचा बन जाने के बाद ही सूक्ष्म शिल्प-कर्म शुरू होता है।

दीनबन्धु को अब रेखा की आंखों में एक विशिष्ट सौन्दर्य दिखाई पड़ा। कन्धे से उसकी बांहें कितनी सहज और सुन्दर ढंग से किसी पे

टहनियों की तरह निकल आई थीं। उसकी सलज्ज बांहों ने थोड़ा-सा लरज कर अपने अनछुए स्तनों को जरा-सा आच्छादित कर लिया था।

'थक गई हो तो वेदी पर आकर बैठ सकती हो। उसे घुमाया जा सकता है। जरूरत पड़ने पर तुम्हें घूम जाने के लिए कहूँगा,' द्रुत गति से अपने कार्य को करते हुए ही दीनबन्धु ने रेखा को निर्देश दिया।

निर्वसना रेखा कोई उत्तर न देकर पहले की ही तरह चुपचाप खड़ी रही। शर्म से बेचारी काठ-सी बन गई थी।

इतनी देर तक रेखा के शरीर को देखते-देखते दीनबन्धु को एक आइडिया आया। भयंकर सूखा पड़ने के बाद वसन्त आगमन पर प्रकृति के साथ जैसा होता है, वैसा। यौवन के इस वसन्त में कोई उच्छ्वास नहीं होता, पर न्यूनता भी कुछ नहीं रहती। हां हर मोड़ पर सूखा अपनी छाप जरूर छोड़ जाता है। प्रकृति के राज्य में शायद ऐसा ही होता है। रेखा भी अवश्य अभाव, तंगी और अवहेलना में अपने दिन काट रही थी। उसका शरीर इसलिए पुष्ट नहीं था, फिर भी यौवन को तो रोका नहीं जा सकता। परम लग्न में सारी बाधा विपत्तियों को तिरोहित कर यौवनेश्वर अपनी इस पुजारिन पर भी रीझ गए थे।

बहुत साल पहले दीनबन्धु की सजग दृष्टि ने किसी अन्य युवती के शरीर में रूप को खोजा था। वह भी तो उस समय इतनी ही अपुष्ट थी। पर उसके शरीर से पवित्रता की ज्योति मानो फूट-फूट कर निकल रही थी। निर्वसना नारी को देखते ही दीनबन्धु समझ गए थे कि यह शरीर बिल्कुल अछूता है। फिर भी चेहरे की कौन-सी रेखा, आंखों का प्रकाश और उसकी छाया इस पवित्रता की घोषणा कर रहे थे, इसे ढूंढ़ने में उन्हें बहुत समय लगा था। माधवी को क्या वे बातें याद होंगी?

रेखा धीरे-धीरे संकोच से अहिल्या बन गई थी। दुर्बल बांहों से बार-बार अपने स्तनों को ढंकने की व्यर्थ कोशिश कर रही थी और दीनबन्धु को याद आ रहा था कि बहुत साल पहले, किसी और एक लड़की को उन्होंने बड़े संकोच से वेदी पर बैठते हुए देखा था। दीनबन्धु की उम्र तब बहुत कम थी।

उस समय दीनबन्धु कल्पना के पंख फैलाकर फिडियस, माइकेल

ऐंजेलो और रोंदा की दुनिया में सैर करते थे। उनके मानस पर अमरावती एलिफेण्टा, खजुराहो तथा कोणार्क के पत्थरों पर उत्कीर्ण स्त्री-पुरुषों की भव्यता अंकित थी।

वह भी एक अजीब-सा अनुभव था। लाहा की स्कूल का छात्र दीनबन्धु अपने एक सहपाठी के साथ किसी दिन म्यूजियम देखने चला गया था। युग-युगान्तर के मृतकों की दानवाकृतियाँ उन्हें आकृष्ट नहीं कर सकी थीं। मिस्र की ममी भी उनका मन नहीं जीत सकी थी। बड़ी देर तक इधर-उधर घूमने के बाद अचानक अति प्राचीन युग की उस नवीना यक्षिणी की मूर्ति पर दीनबन्धु की दृष्टि टिकी।

पहली नजर में ही दीनबन्धु ने अज्ञात निरंकुश आकर्षण का अनुभव किया था। बहुत देर तक निहार कर भी उसको देखने की लालसा नहीं मिटी। कुछ दिनों के बाद दीनबन्धु यक्ष-माया से फिर भेंट करने के लिए दुबारा म्यूजियम आ पहुँचे। क्षीण कटि, पीन पयोधरा यक्षिणी की पाषाण-मूर्ति के शरीर पर काल-क्षत के तरह-तरह के निष्ठुर चिह्न बने हुए थे। किसी विजयोन्मत्त सेनानी के निष्ठुर परिहास में यक्षिणी के दोनों हाथ कट गए थे। किसी लुटेरे ने शायद यक्षिणी की नाक भी काट ली थी। फिर भी मानो यक्षिणी की पवित्रता को वे छू नहीं पाए थे। क्षमा-दीन सुन्दर आँखों से यह निष्पाप यक्षिणी आज भी किसी की प्रतीक्षा कर रही थी।

तब तक दीनबन्धु की इतना कुछ समझने की उम्र नहीं हुई थी। फिर भी तरुण दीनबन्धु अक्सर इस रहस्यमयी यक्षिणी के दर्शन के लिए व्याकुल हो उठते थे। घर से उतनी दूर जाने के किराए के पैसे अक्सर उन्हें घर में नहीं मिलते थे। इसलिए रोज पैदल ही जाना पड़ता था।

वह रोज पैदल चलकर म्यूजियम जाते थे। उस पाषाणी यक्षिणी को एक बार देख कर तुरन्त ही वापस घर के लिए रवाना होना पड़ता था उन्हें, नहीं तो घर लौटने में देर हो जाती। किराए के पैसे बचाने के लिए पैदल चलने पर जूता जो घिसता हो, उन्होंने जूते के नीचे खास किस्म की लोहे की कीलें जड़वा ली थीं। चलते समय ठक्-ठक् की आवाज होती। दोस्त पूछते, 'जूते के घोड़े की नाल ठुक गई है क्या?' वह

नहीं देते, फिर भी दोस्त उन्हें छोड़ते नहीं। उस दिन से दोस्तों के बीच दीनवन्धु घोष का नाम पड़ गया था—अश्वघोष।

अश्वघोष एक माने हुए कवि थे। पर कविता में दीनवन्धु की कोई गति नहीं थी। यहां तक कि पढ़ने-लिखने से भी उनका जी जल्दी ही ऊब गया। अजायबघर की उस यक्षिणी से न मालूम किस बुरे क्षण में उनकी मुलाकात हुई थी। मायाविनी ने सचमुच ही दीनवन्धु पर वशीकरण मन्त्र फेर दिया था।

कितने दिनों तक कितने ही ढंग से दीनवन्धु ने यक्षिणी की तस्वीर बनाई थी, उसका कोई हिसाब ही नहीं था। कल्पना में यक्षिणी को उसके हाथ और उसकी नाक लौटाकर दीनवन्धु बड़े खुश हुए थे।

उसके बाद दीनवन्धु की भेंट उस विख्यात मूर्तिकार से हुई थी। उनका असली नाम कह दूं, तो सभी पहचान जाएंगे। परिचय बताकर झमेला बढ़ाने से कोई लाभ नहीं। यूं समझ लीजिए, उनका नाम था—रामपाल।

पहले तो रामपाल ने दीनवन्धु को डांटकर भगा दिया था। बोले थे, 'बेवकूफी न करके पढ़ाई-लिखाई में मन लगाओ।'

पर दीनवन्धु ने आस नहीं छोड़ी। फिर एक दिन वह रामपाल के स्टुडियो में पहुंच गए। विनत होकर बोले, 'गढ़ाई के अलावा मुझसे और कोई काम नहीं होगा।'

दीनवन्धु की तत्परता देखकर शिल्पगुरु ने अन्त में उन्हें मौका दिया। पर साथ ही दीनवन्धु को सचेत किया, 'भाग्य में तुम्हारे कष्ट ही लिखा है तो मैं क्या कर सकता हूं! भोगोगे ही। मैं तो बस निमित्त मात्र हूं।'

गुरु ने ठीक ही कहा था। रूप की साधना में उन्हें कम तो नहीं सहना पड़ा था। दीनवन्धु को सहसा सारी पुरानी बातें याद हो आईं।

ठक् से आवाज हुई। रेखा मुड़कर खड़ी हुई—रेखा का पार्श्व भाग प्रकाश में जगमगा उठा। रेखा की रीढ़ की हड्डी को दीनवन्धु देख पा रहे थे—मानो नरम कीचड़ पर कोई सांप थोड़ी देर सोकर एक छाप छोड़ कर सरक गया हो।

रामपाल के स्टुडियो में ही नग्न नारी-शरीर के साथ दीनवन्धु की

वह पहली देखा-देखी थी। बहुत साल पहले के उस दिन को दीनबन्धु अब भी नहीं भूल पाए थे। किसी शिल्पी के लिए भुलाना शायद सम्भव भी नहीं था। स्टुडियो के साथियों के बीच उस दिन सुबह से ही उत्तेजना छाई हुई थी।

दीनबन्धु के एक दोस्त थे—अप्पाराव। खबर वही लाए थे। कहा था, 'आज गुरुजी बाहर से माडल ला रहे हैं।'

थोड़ी देर बाद अच्छे कपड़े पहने हुए, देखने में भी भली एक एंग्लो इण्डियन लड़की को गुरुजी के कमरे में बैठे देखा गया था। अप्पाराव की ही खबर थी कि यह लड़की आर्ट-स्कूल में माडल का काम करती है।

स्टुडियो में आकर रामपाल बोले, 'मैं आज नग्न माडल के साथ तुम लोगों का परिचय करवाऊँगा। लेकिन याद रखना, नारी तुम्हारे लिए नारी नहीं, प्रकृति की प्रतिकृति है। डाक्टरी पढ़ते समय जिस तरह शव-शल्य आवश्यक है, हम भी उसी तरह जीवन्त जीवों से शिल्प का उपादान संग्रह करते हैं।'

रामपाल ने आगे कहा था, 'इस तरह तिल-तिल कर ईश्वर ने अपनी कला की सृष्टि की है—कहीं से ऊँची, कहीं से नीची, कहीं से बाँकी। हमें भी उसी तरह सौन्दर्य की सृष्टि करनी होगी। वासना की गुदगुदी से सकाम होने पर कोई भी काम नहीं सधेगा।'

विद्यार्थी उस समय गुरु का भाषण सुनने के लिए उत्सुक नहीं थे। वे तो इसके बाद के अध्याय के लिए बेचैन थे।

माडल को सामने लाकर गुरु ने छात्रों से उसका परिचय करवाया। बोले, 'इसका नाम एड्ना है।'

एड्ना उस समय सजी-सवरी थी। एड्ना के शरीर के लिए सभी के मन में कुतूहल था। उसको कपड़े उतारने के लिए कहकर रामपाल छात्रों को उपदेश के तौर पर बोले, 'शरीर को तुम शिल्प के माध्यम से समझोगे। याद रखना, शरीर तुम पर कभी हावी न हो जाए!'

उसके बाद की घटना दीनबन्धु कभी नहीं भूलेंगे। शव-शल्य-कक्ष में नई-नई डाक्टरी पढ़ते वक्त कुछ विद्यार्थियों के साथ भी ऐसा होता है। नग्न एड्ना जब कमरे में आकर बैठी, तब रामपाल कमरे में नहीं थे।

आर्ट-स्कूल के किराए की माडल एड्ना के लिए नग्न होना कोई विशेष घटना नहीं थी। अनावृत्त शरीर में उसने एक सिगरेट सुलगाई। बोली, 'सारी मैन, तुम्हारे काम में दिक्कत होगी, पर स्मोक किए बिना मैं नहीं रह सकती। जब हमारे होंठों को बनाने लगोगे तो कह देना, मैं सिगरेट फेंक दूंगी।'

नारी-शरीर के प्रति दीनबन्धु के बचपन से संजोए हुए स्वप्न को एड्ना के बहु-व्यवहृत, अपरिष्कृत शरीर ने चाबुक-सी चोट पहुंचाई। एड्ना बोली, 'आर्ट स्कूल के विद्यार्थी तो बारी-बारी से मुझे खिलाते-पिलाते हैं, सिगरेट की कीमत भी देते हैं। तुम लोग भी मुझे खिलाना-पिलाना।'

दीनबन्धु को एकाएक मितली-सी आने लगी। दो-चार क्षण के लिए उनकी आंखों के सामने अँधेरा छा गया। फिर वह कब जमीन पर बैठ गए, इसका उन्हें ख्याल ही नहीं रहा। अप्पाराव के बुलाने पर उन्हें होश आया। नग्न एड्ना भी सकपका गई। आकर उनका कन्धा पकड़ कर झक-झोर कर बोली, 'हैलो मैन, क्या हुआ तुम्हें ?'

तब तक दीनबन्धु अपने को संभाल चुके थे। बोले, 'सारी !'

एड्ना खिलखिला कर हंस पड़ी। बोली, 'सचमुच, अब भी मैं छोकरों के सर में चक्कर ला सकती हूं !'

यह घटना रामपाल के कानों तक भी पहुँची थी। उन्होंने दीनबन्धु को एकान्त में ले जाकर उनसे पूछा था, 'क्या हुआ था ? मुझे बताओ, दीनबन्धु !'

वह कुछ जवाब नहीं दे पाए थे। फिर रामपाल खुद ही गम्भीर भाव से बोले थे, 'शरीर के बारे में तुम्हारी जो भी कल्पना थी, उसके साथ मेल नहीं बैठा न ? पर यह तो शुरुआत है।'

पहली चोट इतनी तीव्र क्यों हुई थी, यह आज के अनुभवी दीनबन्धु समझ नहीं पाते। पर गुरु ने ठीक ही कहा था, उनके सौन्दर्य की खोज उसी दिन से शुरू हुई थी। पुरुष तथा नारी की कितनी ही अनावृत्त देह-यष्टियों में दीनबन्धु की आँखों ने परिक्रमा की थी—रूप को ढूंढ़ती फिरी थीं, अपरूप को हृदय में पकड़ रखने की कोशिश की थी। तब जो

रूप की तपस्या शुरू हुई थी, उसका अन्त आज भी इस रूपतापस के लिए नहीं हुआ था।

दीनबन्धु अचानक वर्तमान में लौट आए। उनका मन आज बार-बार अतीत में भागना चाह रहा था। उन्होंने निर्वस्त्र रेखा की तरफ नजर उठाई।

रेखा बेचारी बड़ी थकी-थकी-सी लग रही थी। उन्होंने सोचा, उसे थोड़ी देर के लिए छुट्टी दे देनी चाहिए। अगर उसके चेहरे का स्वाभाविक शान्त सौन्दर्य नहीं लौटा, तो वह किसे उत्कीर्ण करेंगे?

रेखा छुट्टी की अनुमति मिलते ही लपक कर कमरे के अन्दर चली गई। अपने अनावृत शरीर को पुरुष की धधकती आँखों के आगे से हटा सकने पर बेचारी ने चैन की साँस ली होगी।

चाय बना कर दीनबन्धु ने आवाज दी, 'रेखा, तुम्हारे लिए चाय तैयार है।'

कपड़े पहन कर आंचल को संभालती रेखा सामने आकर बैठ गई। चाय का प्याला बढ़ाते हुए दीनबन्धु ने पूछा, 'तुम्हें बहुत कष्ट हो रहा है न?'

रेखा बोली, 'नहीं, कोई खास नहीं।'

दीनबन्धु रेखा के घर के बारे में पूछताछ करने लगे। घर में रेखा के कई भाई-बहन थे। बीमारी-सीमारी भी चल रही थी। रुपयों की सख्त जरूरत थी। ब्लड-बैंक में खून देकर वह कई बार रुपए ले आई थी। वह अच्छी राह ही जाना चाहती थी। 'ठीक है, तुम आराम करो। समय पर तुम्हें फिर बुलवा लूंगा।' कह कर दीनबन्धु ने रेखा को वापस भेज दिया।

दीनबन्धु को याद है कि नग्न शरीर के पाठ के बारे में शुरू में उनके मन में भी बड़ी शंकाएँ थीं। अपने गुरु से वह पूछते भी थे, 'हमारा देश पश्चिम का देश नहीं है। हम जितनी मूर्तियाँ बनाएँगे, वे तो सब प्रख्यात लोग होंगे। वे तो हमारे सामने अनावृत्त होकर आएँगे नहीं। फिर निर्वस्त्र माडलों पर इतना ज़ोर क्यों दिया जाता है?'

रामपाल हंस पड़े थे। बोले, 'मेडिकल के विद्यार्थी भी ठीक इसी तरह के प्रश्न करते हैं। जीवित व्यक्तियों की चिकित्सा करने के लिए मुर्दे की

चीर-फाड़ करने की क्या जरूरत है ? पर जरूरत है। जब और अनुभवी बनोगे, तब समझोगे कि मानव-शरीर ही शिल्पी का विश्वविद्यालय है।'

रामपाल ने सच ही कहा था। इतने वर्षों के बाद भी, जब भी समय मिलता था, दीनबन्धु विद्यार्थी की निष्ठा से माडल को देखते थे। शक्ति के उन्मेष से उद्वेलित, कठिन पेशियों से मण्डित पुरुष के दृढ़ शरीर से प्रेरित होते। पीनोन्नत पयोधरा रमणी की देह-वल्लरी से भी वह तत्व ग्रहण करते। शैशव, कैशोर्य, यौवन, प्रौढ़त्व, वार्द्धक्य, मानो एक-एक ऋतु हैं—नारी और पुरुष के शरीर की बगिया में वे अपनी छाप छोड़ जाते हैं। संसार के अनुभव सिर्फ चेहरे पर ही नहीं, शरीर के अणु-परमाणु पर भी अदृश्य छाप छोड़ जाते हैं। प्रत्येक रेखा, हर उभार एक-एक कहानी की याद दिलाता है।

दीनबन्धु ने चाय के कप से चुस्की ली। मास्टर साहब के उदास चेहरे में देवीदास पढ़ नहीं पा रहा था कि वह क्या सोच रहे हैं। कितना कुछ सोच रहे थे दीनबन्धु। सोचने का कहीं कोई अन्त भी है। माधवी का चेहरा उन्हें असमंजस में डाल रहा था—बार-बार उसका चेहरा उनकी आँखों के आगे आकर सामने रखी तस्वीर को अस्पष्ट-सा बना रहा था। उनकी दृष्टि बार-बार ठोकर खा रही थी।



रेखा फिर आ कर खड़ी हुई। दीनबन्धु निर्वसना रेखा की नाभि की तरफ देख रहे थे। पहले तलवा या पैरों से शरीर का वृक्ष ऊपर की तरफ उठा है। पैर पर ही किसी भी मूर्ति का बैलेंस बना हुआ रहता है। बहुत दिनों के अनुभव से दीनबन्धु यह जान पाए थे कि नाभि ही शरीर का केन्द्र है। नाभि से ही शरीर रूपी वृक्ष ऊपर की तरफ उठा है, नाभि के नीचे का अंश उसकी जड़ है। ऊपर मुखारविन्द खिला हुआ होता है।

गीले कपड़े के आवरण को अपूर्ण माटी की मूरत से उतार कर दीनबन्धु काम शुरू करने ही वाले थे। ठीक उसी समय बाहर से बड़े जोरों से दरवाजे की घण्टी बजी। बिजली की तरंग की तरह दीनबन्धु कल्पना-लोक की तस्वीर टूट कर बिखर गई। बेचारी रेखा भी चौंक उठी।

बाहर झाँक कर देवीदास घबराया हुआ बोला, 'मास्टर साहब, आप एक बार घर के अन्दर जाइए। भाभी की तबियत शायद ठीक नहीं है।'

लकड़ी का चाकू फेंक कर, पतीले में रखे पानी से हाथ धो कर दीनबन्धु जल्दी से अन्दर चले गए। घर में एक नौकरानी थी। उसी ने आ कर बताया, 'माजी तो कैसे ही कर रही हैं।'

माधवी बिस्तर पर पड़ी-पड़ी बेचैनी से छटपटा रही थी। [illegible] शरीर बीच-बीच में टेढ़ा-सा हो रहा था।

अब सबल हाथों से दीनबन्धु ने माधवी के जाने-पहचाने पकड़ कर थोड़ा-सा झकझोरा। माधवी के अवचेतन ने अपनी [illegible] लगा कर अपने शरीर को पत्थर बना रखा था।

उसका शरीर तकलीफ से सिकुड़ रहा था और उसी हालत में वह अनजाने में कातर स्वर में पुकार रही थी, 'बाबू, बबुआ मेरे !'

थोड़ी देर चुप रहकर वह फिर दर्द से कराह उठी। 'बाबू, बबुआ मेरे !' बहुत दिनों के बाद ये शब्द दीनबन्धु के कानों में पड़े। उन्हें याद आया, शरीर के ऐसे ही अवर्णनीय कष्टों को झेल कर माधवी बबुआ को दुनिया में लाई थी।

उस दर्द की तस्वीर दीनबन्धु के मन से अभी तक मिटी नहीं थी—सच्ची बात तो यह थी कि उनकी एक बार इच्छा हुई थी कि मां की प्रसव-वेदना को वह अपने शिल्प का विषय बनाएं। सिर्फ एक दिन नहीं, बेचारी माधवी ने कई दिनों तक सन्तान को जन्म देने के लिए बड़ा कष्ट सहा था। अनभिज्ञ दीनबन्धु खुद भी पागलों की तरह दौड़-भाग कर रहे थे। डाक्टर ने कहा था, 'पहली सन्तान के जन्म के समय बहुतों को कुछ ज्यादा ही कष्ट होता है।'

जीवन और मृत्यु के सन्धि-स्थल पर खड़े हो कर अन्त में माधवी ने बबुआ को जन्म दिया। उन कुछ ही दिनों में माधवी का शरीर मानो आधा रह गया था।

दीनबन्धु को लगा कि जिस दिन वह अस्पताल से कमजोर माधवी और अपनी नवजात सन्तान को अपने गरीबखाने में लाए थे—वह कल की ही बात है। उनकी गरीबी, उनकी अक्षमता उस दिन उन्हें बड़ी अखरी थी। पर माधवी ने कभी उनका सर झुकने नहीं दिया था।

'क्या सोच रहे हो ?' बच्चे को सुला कर माधवी पूछती।

रक्तहीन माधवी के ओठों की तरफ देखते हुए दीनबन्धु बोलते, 'देख रहा हूं, मां बनना कोई आसान काम नहीं है।'

'ऊँ हूं। तुम कुछ और भी सोच रहे हो,' माधवी क्षीण स्वर में बोलती 'बाप बनना भी कोई आसान बात नहीं, पिछले कुछ दिनों में तुम भी बड़े दुबले हो गए हो।'

दीनबन्धु अपने को संभाल नहीं पाए। बड़े उदास भाव से बोले, 'माधवी, तुम्हारी सन्तान एक ऐसे घर में पैदा हुई है, जिसमें सही देखभाल करने की सामर्थ्य तक मुझमें नहीं।'

'छिः ऐसा नही बोलते !' माधवी दृढ़ विश्वास के साथ बोली थी, 'मेरा लड़का एक ऐसे आदमी के घर में पैदा हुआ है, जो कभी बड़ा नाम कमाएगा, सारे देश के लोग उसे पहचानेंगे।'

दीनबन्धु को माधवी की बातें सुन कर और भी ठेस पहुँचती। उनकी ऐसी हालत थी कि खाना पकाने के लिए वह किसी को रख भी नही सकते थे। अपने काम से फुर्सत पाते ही किसी तरह से कुछ पका लेते।

इतने पर भी दीनबन्धु कभी गरीबी से घबराए नही। इस देश में जो शिल्प की साधना करना चाहता है, वह अमीर बनने का स्वप्न नही देखता। पर साधारण आदमी की तरह जीने का हक तो उसे है। बीमार और सद्य:-प्रसूता पत्नी और बच्चे ने दीनबन्धु की गरीबी को असहनीय बना दिया।

माधवी के सामने रखी कुर्सी पर बैठ कर दीनबन्धु बोले, 'मुझसे शादी करके तुमने बड़ी गलती की है, माधवी !'

माधवी की बड़ी-बड़ी आँखें सैनों से बातें किया करती थी। ओठो पर अंगुली रखकर आगे और कुछ बोलने के लिए मना करते हुए वह बोली, 'बच्चे की नींद टूट जाएगी।' फिर शैतानी भरी नजरों से बोली थी, 'गलती तुम्ही ने की है। माडल से शादी करने पर बाद अफसोस तो होता ही है।'

'ओह !' दीनबन्धु ने माधवी को चुप करना चाहा था। पर माधवी चुप नही रही। धीरे-से बोली, 'भुवन डाक्टर ने ढलती उम्र में नर्स से शादी की थी। अब पत्नी को भगाने के लिए तरकीबें ढूँढ रहा है।'

'यह बात है !'

तकिए के बल बिस्तर पर बैठ कर माधवी बोली, 'एक दिन ऐसा आएगा, जब तुम भी बहुत बड़े बनोगे। अपनी मूर्तियाँ बनाने के लिए राजा-महाराजा भी तुम्हारे पास दौड़े आएँगे। तब --!'

'तब क्या ?'

पति की गोद मे सर रख कर माधवी बोली थी, तब मैं तुम्हें भाऊँगी ?'

उस दिन माधवी कितनी शान्त, कितनी सौम्य दिख रही

उसका शरीर तकलीफ से सिकुड़ रहा था और उसी हालत में वह अनजाने में कातर स्वर में पुकार रही थी, 'बाबू, बबुआ मेरे!'

थोड़ी देर चुप रहकर वह फिर दर्द से कराह उठी। 'बाबू, बबुआ मेरे!' बहुत दिनों के बाद ये शब्द दीनबन्धु के कानों में पड़े। उन्हें याद आया, शरीर के ऐसे ही अवर्णनीय कष्टों को झेल कर माधवी बबुआ को दुनिया में लाई थी।

उस दर्द की तस्वीर दीनबन्धु के मन से अभी तक मिटी नहीं थी—सच्ची बात तो यह थी कि उनकी एक बार इच्छा हुई थी कि मां की प्रसव-वेदना को वह अपने शिल्प का विषय बनाएं। सिर्फ एक दिन नहीं, बेचारी माधवी ने कई दिनों तक सन्तान को जन्म देने के लिए बड़ा कष्ट सहा था। अनभिज्ञ दीनबन्धु खुद भी पागलों की तरह दौड़-भाग कर रहे थे। डाक्टर ने कहा था, 'पहली सन्तान के जन्म के समय बहुतों को कुछ ज्यादा ही कष्ट होता है।'

जीवन और मृत्यु के सन्धि-स्थल पर खड़े हो कर अन्त में माधवी ने बबुआ को जन्म दिया। उन कुछ ही दिनों में माधवी का शरीर मानो आधा रह गया था।

दीनबन्धु को लगा कि जिस दिन वह अस्पताल से कमजोर माधवी और अपनी नवजात सन्तान को अपने गरीबखाने में लाए थे—वह कल की ही बात है। उनकी गरीबी, उनकी अक्षमता उस दिन उन्हें बड़ी अखरी थी। पर माधवी ने कभी उनका सर झुकने नहीं दिया था।

'क्या सोच रहे हो?' बच्चे को सुला कर माधवी पूछती।

रक्तहीन माधवी के ओठों की तरफ देखते हुए दीनबन्धु बोलते, 'देख रहा हूं, मां बनना कोई आसान काम नहीं है।'

'ऊं हूं। तुम कुछ और भी सोच रहे हो,' माधवी क्षीण स्वर में बोलती 'बाप बनना भी कोई आसान बात नहीं, पिछले कुछ दिनों में तुम भी बड़े दुबले हो गए हो।'

दीनबन्धु अपने को संभाल नहीं पाए। बड़े उदास भाव से बोले, 'माधवी, तुम्हारी सन्तान एक ऐसे घर में पैदा हुई है, जिसमें सही देखभाल करने की सामर्थ्य तक मुझमें नहीं।'

'छिः ऐसा नहीं बोलते !' माधवी दृढ विश्वास के साथ बोली थी, 'मेरा लड़का एक ऐसे आदमी के घर में पैदा हुआ है, जो कभी बड़ा नाम कमाएगा, सारे देश के लोग उसे पहचानेंगे।'

दीनबन्धु को माधवी की बातें सुन कर और भी ठेस पहुँचती। उनकी ऐसी हालत थी कि खाना पकाने के लिए वह किसी को रख भी नहीं सकते थे। अपने काम से फुर्सत पाते ही किसी तरह से कुछ पका लेते।

इतने पर भी दीनबन्धु कभी गरीबी से घबराए नहीं। इस देश में जो शिल्प की साधना करना चाहता है, वह अमीर बनने का स्वप्न नहीं देखता। पर साधारण आदमी की तरह जीने का हक तो उसे है। बीमार और सद्यः-प्रसूता पत्नी और बच्चे ने दीनबन्धु की गरीबी को असहनीय बना दिया।

माधवी के सामने रखी कुर्सी पर बैठ कर दीनबन्धु बोले, 'मुझसे शादी करके तुमने बड़ी गलती की है, माधवी !'

माधवी की बड़ी-बड़ी आँखें सैनों से बातें किया करती थीं। ओठों पर अंगुली रखकर आगे और कुछ बोलने के लिए मना करते हुए वह बोली, 'बच्चे की नींद टूट जाएगी।' फिर शैतानी भरी नजरों से बोली थी, 'गलती तुम्हीं ने की है। आइन्स में शादी करने पर बाद अफसोस तो होता ही है।'

'ओह !' दीनबन्धु ने माधवी को चुप करना चाहा था। पर माधवी चुप नहीं रही। धीरे-से बोली, 'सुना डाक्टर ने इतनी उम्र में गर्ने में शादी की थी। अब पत्नी को बचाने के लिए तरकीबें ढूंढ रहा है।'

'यह बात है !'

तकिए के बल बिस्तर पर बैठ कर माधवी बोली, 'एक दिन ऐसा आएगा, जब तुम भी बहुत बड़े बनोगे। अपनी मूर्तियाँ बनाने के लिए राजा-महाराजा भी तुम्हारे पास दौड़े आएँगे। तब ...!'

'तब क्या ?'

पति की गोद में सर रख कर माधवी बोली थी, 'तब मैं तुम्हें भाऊँगी ?'

उस दिन माधवी कितनी शान्त, कितनी सौम्य दिख रही थी। आज

वही माधवी दर्द से विकृत चेहरा लिए बिस्तर से छटक कर बाहर गिरना चाह रही थी।

दर्द उसके सारे शरीर को तोड़-मरोड़ कर अब शायद थक चुका था। थकान से माधवी शायद अब सोना चाहती थी। नींद में डूबने के पहले वह बुदबुदाई, 'बाबू, बबुआ मेरे…'

इन शब्दों ने मानो दीनबन्धु को नींद से जगा दिया। माधवी के कातर स्वर से पति के सारे शरीर में तेज पावर की बिजली-सी दौड़ गई, 'बाबू, बबुआ, बबुआ!' दीनबन्धु बुदबुदाए।

फिर चौंक कर उन्होंने दीवार पर टंगे कलैण्डर पर नजर दौड़ाई। उन्हें लगा, जैसे लाल रंग में लिखी २ तारीख ने मानो कोई बड़ा-सा आकार ले लिया है। डेढ़ इंच के आकार की टाइप में लिखा २ नवम्बर धीरे-धीरे बड़ा होता हुआ सारी दीवार पर छा गया है। सारी दीवार पर दीनबन्धु लाल रंग का २ देख पा रहे थे। उस तारीख के शरीर से खून टपक रहा था।

लेकिन यह क्या हुआ? लाल खून सूख कर अब काला पड़ रहा था; आकाश के काले बादल पागलों की तरह दीनबन्धु के कमरे में घुस पड़े थे अब वह समझ सके कि माधवी कल क्यों नहीं घर से निकली थी। आज सुबह भी जब वह अपनी नाराजगी हाव-भाव से जाहिर कर रहे थे, तब माधवी ने क्यों उस तरह से उनकी तरफ देखा था। उनको अब याद आ रहा था कि यह विचित्र तारीख ही कभी माधवी और उनके जीवन में सबसे बड़े दुख को खींच लाई थी। बबुआ का निष्प्राण शरीर इसी पलंग पर कोने में पड़ा हुआ था। आज की तरह उस दिन भी माधवी बेहोश होकर पत्थर-सी बन गई थी। निष्ठुर मृत्यु लुटेरे की तरह उनका सब कुछ लूट ले गई थी।

अब दीनबन्धु को सारी बातें समझ में आ रही थीं। साधन के नशे धुत बन कर इस दानवीय दिन की असलियत को वह भूल बैठे थे। लेकिन माधवी उसे नहीं भूली थी। उसने याद रखा था। इतने दिनों के बाद भी २ नवम्बर किसी भयंकर जल्लाद की तरह माधवी के मन में बैठा था और वह अपने को नहीं संभाल सकी थी।

पर यह तो बहुत दिन पहले की बातें थी। एक, दो, तीन, चार या पाँच वर्ष नहीं—निष्ठुर मृत्यु ने उनके बीच बहुत वर्षों का व्यवधान डाल दिया था। दीनबन्धु ने अपने को समझाने की कोशिश की, पर कोशिश मात्र से ही क्या मन कुछ समझ पाता है— मन क्या हर वक्त तर्क को मानता है?

ख्याति, प्रतिष्ठा, सफलता—आज दीनबन्धु और उनकी पत्नी के पास सब कुछ था। आज वह सुख और चैन की सोने की चाभी अपनी पत्नी के आँचल में बाँध सकते थे। ऐसे समय में यह क्या हुआ?

'माधवी!' कातर स्वर में दीनबन्धु ने पुकारा। लेकिन माधवी कुछ भी नहीं बोली। वह बुरी तरह से भयभीत हो उठे और माधवी के करीब आ कर खड़े हुए, 'नहीं, ये ही तो साँसें हैं माधवी की!' उसका रिक्त वक्ष अपनी बाह्य गरिमा खोए बिना यथावत धोंकनी की तरह उठ-बैठ रहा था।

'माधवी!' दीनबन्धु ने अपराधी कण्ठ से पुकारा। कोई जवाब नहीं आया। माधवी सारे दुख-दर्दों से दूर नींद की नगरी में पहुँच चुकी थी।

स्टूडियो में रेखा और देवीदास तब भी दीनबन्धु की प्रतीक्षा में बैठे थे। वहाँ जा कर दीनबन्धु ने देवीदास से कहा, 'मैं अब और काम नहीं करूँगा। तुम अगर चाहो तो माडलिंग का काम चालू रख सकते हो।'

देवीदास बोला, 'नहीं मास्टर साहब, काम साथ ही करेंगे।'

'तुम आज जा सकती हो रेखा!' दीनबन्धु ने रेखा को छुट्टी दे दी।

इतनी जल्दी छुट्टी पा जाने पर रेखा खुश ही हुई। उसने कमरे में जा कर झटपट कपड़े पहन लिए। उसके हाथ में दस रुपए दे कर दीनबन्धु बोले, 'कल फिर आना।'

देवीदास भी चला गया। दीनबन्धु ने रेखा की [illegible] [illegible] की मूर्ति की तरफ नजर उठाई।

बहुत दिन पहले, ठीक इसी तरह से किसी और [illegible] से दीनबन्धु ने कहा था, 'यह लो रुपये, कल फिर आना।'

आज की गिनती में वे रुपये भी कम थे। [illegible]

मार्ग भी इतना प्रशस्त नहीं था। तब के दीनबन्धु और आज के दीनबन्धु एक तो नहीं थे!

वह स्त्री-माडल भी तिल-तिल कर मूर्तिमती हो उठी थी। उसके जाने के बाद भी दीनबन्धु ने मिट्टी से अपने को अलग नहीं किया था। उनकी एक आदत थी। जो सामने नहीं रहता, वह कल्पना में उसी चेहरे को देखने की कोशिश करते। उसी कल्पना की छवि से अपनी कृति को मिला कर देखना चाह रहे थे, पर मिला नहीं था। जो मूर्ति अभी-अभी साड़ी-ब्लाउज पहन कर बाहर गई थी, उसकी कोई छाप इस नरम मिट्टी के पिण्ड पर नहीं पड़ पाई थी।

कितनी पुरानी बात थी। दीनबन्धु को अच्छी तरह से याद आ रहा था, दूसरे दिन सुबह वह लड़की फिर आई थी। निर्वस्त्रा हो कर वेदी पर बैठने के बाद हैरत से उसने देखकर पूछा था, 'कल जिसे बनाया, वह कहाँ है?'

'उसका खून कर डाला है!' युवक दीनबन्धु ने कहा था। लड़की तब भी आँखें फाड़ कर देख रही थी।

'पसन्द नहीं आई इसलिए तोड़ डाला!' दीनबन्धु हा···हा···कर हंस उठे थे।

माधवी उन्हें गलत समझ बैठी थी। उसने सोचा, दीनबन्धु को शायद माडल ही पसन्द नहीं था। बड़े उदास भाव से बोली, 'कोई चीज पसन्द न आने पर क्या उसे नष्ट किया जा सकता है?'

यह क्या कह रही थी लड़की! दीनबन्धु थोड़े हैरान तो हुए, फिर भी हल्के भाव से बोले, 'अपनी सृष्टि को ले कर मेरी जो मर्जी, मैं करूँगा।'

लेकिन सृष्टि को ले कर किसी एक की 'जो मर्जी' करने की आजादी ही कभी उनके दुःख का कारण बन सकती थी, यह दीनबन्धु समझ नहीं पाए थे। इस समय उनकी आंखें गीली हो गई थीं। बहुत दिन पहले श्मशान में खड़े हो कर रुंधी आवाज में शोक-सन्तप्त दीनबन्धु ने पूछा था, 'हे ईश्वर, अपनी सृष्टि को ले कर तुम्हारी 'जो मर्जी' करने का तुम्हें क्या अधिकार है?'

पर इतने दिनों के बाद भी ईश्वर की तरफ से कोई जवाब नहीं आया था। जवाब शायद कभी आएगा भी नहीं। अपनी [illegible] के [illegible] में बैठना भी दीनबन्धु को भारी पड़ रहा था। वह अपने कमरे में लौट आए। माधवी तब भी सो रही थी। सोई रहे! [illegible] से [illegible] निद्रा कम-से-कम इस निष्ठुर बेला में बिचारी माधवी को [illegible] दे! वह उसे तंग नहीं करेंगे।

लेकिन वह माधवी को निर्निमेष देख रहे थे। कहीं [illegible] तो नहीं पहुँच रही थी? कहीं उसकी नींद भी नहीं टूट जाएगी?

नहीं। उनकी पत्नी माधवी गहरी नींद में सोई थी, जिससे उन्होंने बहुत वर्ष पहले, शायद पचीस साल पहले, शादी की थी।

नींद के सुखद आश्रय में माधवी [illegible] कोई [illegible] देख रही थी। मीठी मुस्कान से उसका चेहरा [illegible] था। क्या मालूम माधवी कौन-सा स्वप्न देख रही थी!

उस दिन भी माधवी ने ऐसा ही कुछ [illegible] था। दीनबन्धु की गोद में सर रख कर बोली थी, 'लग रहा है, मैं कोई स्वप्न देख रही हूँ। सच-सच तुमने मुझसे शादी की है? जिसका कोई [illegible] नहीं, ऐसी एक [illegible] के [illegible] की लड़की से तुमने शादी की किस तरह?'

दीनबन्धु चुप रहे।

पर माधवी चुप नहीं रही। जो लड़की कभी बड़े [illegible] [illegible] दिनों के दरवाजे पर आ कर खड़ी हुई थी, जो [illegible] के [illegible] और संकोच के [illegible] मूँद रहती थी, वह शायद कोई दूसरी ही [illegible] थी। शादी ने उसे अधिकार दिया था, [illegible] दी थी, तभी तो माधवी [illegible] [illegible] करते हुए बोली थी, "जवाब क्यों नहीं देते? इतनी लड़कियों के रहते हुए तुमने मुझसे ही क्यों शादी की?"

माधवी [illegible] [illegible] थी कि दीनबन्धु उससे भी अच्छी किसी लड़की से शादी कर सकते थे। बोली थी, 'तुम जिससे शादी करोगे, [illegible] के [illegible] में उसका भी नाम [illegible] जाएगा।'

उस दिन दीनबन्धु कोई जवाब नहीं देना चाह रहे थे। माधवी बोली थी, '[illegible] हूँ [illegible] है।' [illegible] के लिए [illegible] [illegible] आई थी और हो गई

तुम्हारी हृदयेश्वरी !'

'ऐसा ही होता है।' दीनबन्धु प्रश्न को टाल गए थे।

'मैं जानती हूँ, तुमने मुझसे क्यों शादी की !' माधवी के स्वर में पत्नी वाला दर्प था।

'बोलो क्यों ?' दीनबन्धु ने हंस कर ही पूछा था, पर मन-ही-मन थोड़ा घबराए भी।

'लोग कहते हैं, तुम्हारे मन में दया है, इसीलिए तुमने मुझसे शादी की, क्योंकि मेरे पिता शायद मेरी शादी कर ही नहीं सकते थे। कोई शराबी, विधुर, या फिर किसी की तीसरी पत्नी बनना ही मेरे भाग्य में लिखा था। तुमने तो मुझ पर दया की है।'

दीनबन्धु ने चैन की सांस ली। वह खामखा घबरा रहे थे। माधवी को क्या पता ? इस विवाह के पीछे जो आकस्मिकता थी, जो कारण या घटना थी, वह सिर्फ उन्हें और किसी एक और को ही ज्ञात थी।

सामयिक रूप से अपने को खतरे से बचा कर दीनबन्धु माधवी के प्रति कृतज्ञ थे। बहुत देर तक माधवी को प्यार करते रहे, 'मैं कोई महान व्यक्ति नहीं हूँ, माधवी ! मुझसे ही शादी कौन करता, बोलो ? जो तस्वीरें बनाता है, पत्थर काटता है, उसका भविष्य ही क्या है ? मां-बाप के खाते में वह खर्च के हिसाब में या फिर ऋण के खाते में लिखा जाता है। लोग सोचते हैं, लड़का बर्बाद हो गया।'

माधवी को उनकी बातों पर यकीन नहीं हुआ था। जैसे वह पहले से ही जानती थी कि दीनबन्धु कभी प्रसिद्धि प्राप्त करेंगे। ताज्जुब है। अनिश्चित भविष्य के लिए जब कभी दीनबन्धु आशंकित हो उठते थे, तब माधवी स्वप्न देखा करती थी कि उसके पति की साधना सफल और सार्थक होने जा रही है।

पैसों के लिए दीनबन्धु छुप-छुप कर थिएटर के सीन बनाते थे। माधवी नाराज होती थी, 'यह सब काम तुम किसी की हालत में नहीं करोगे। तलवार से कहीं कोई पेंसिल छीलता है।'

दीनबन्धु कहते, 'लेकिन माधवी रुपयों की तो बड़ी जरूरत है। मुझ जैसे अप्रसिद्ध मूर्तिकार से बड़े लोग मूर्ति क्यों बनवाने के लिए आएंगे ?

उनके पास पैसे भी हैं नहीं ।'

माधवी के स्वर में आत्महीन विश्वास था । 'बोलो भी, [illegible] पश्चात्ताप की सीमा नहीं रहेगी । उन्हीं का पैसा लिए तुम्हारे [illegible] में ही रोष पहता होंगे । मैंने तो तुमसे कुछ भी नहीं मांगा है । मैं तो [illegible] की ही बेटी हूँ । थोड़े पैसों से मुझे गृहस्थी चलाने की आदत है । इस [illegible] किराए के जो पैसे मिलते हैं, अभी उनसे ही बहुत है । तुम अपने पास से जुटे रहो, नहीं तो लोग क्या बात करेंगे ।'

दीनबन्धु आश्चर्यचकित रह गए थे, 'तुम्हारा नाम [illegible] ? नाम कैसे ?'

'लोग कहेंगे, मुझे पढ़ी के बाबत में पढ़कर [illegible] कुछ [illegible] गया । [illegible] के कारण मन [illegible] रह गई ।'

'अच्छा !' दीनबन्धु ने मजाक किया ।

माधवी बोली, 'हम आज तुम मेरे साथ चलो ही । [illegible] बात है, तुम मुझे सब-कुछ सिखलाना देना । मैं ज्यादा पढ़ना-लिखना भी जानती नहीं हूँ—तुम मुझे बड़े-बड़े कलाकारों की कहानियाँ सुनाना । उनके सुख-दुःख की बातें बताना । कौन कैसे बड़ा बना था, उन्होंने जीवन में उन्हें किस प्रकार की प्रेरणा मिली थी, वगैरह वगैरह ।'

'अच्छी बात है, बताऊँगा,' दीनबन्धु बोले थे । पर माधवी मानती ही नहीं, 'मैं तुम्हें छोड़ूँगी नहीं । आज ही से अपना [illegible] शुरू कर दो । मुझे कुछ तो बताओ ।'

'मैं खुद ही कितना जानता हूँ, माधवी ? [illegible] में [illegible] कठिनाइयों के बीच में [illegible] मन हुआ था ।'

'अहा ! तुम्हें क्या कोई [illegible] निवास के लिए [illegible] रहा है ? मैं [illegible] की हूँ । मुझे मन की ही बातें सुनाओ ।'

'अच्छा तो सुनो सुनो,' दीनबन्धु हँस कर बोले थे ।

'तुम्हारा के मकान कई मुश्किल का जान गया है ?'

माधवी की [illegible] में [illegible] दीनबन्धु बोले थे, 'इस संसार का [illegible] है । आज भी कितना [illegible] किया हुआ है, जिनके ज़िन्दगी का कोई [illegible] ही नहीं । [illegible]

'त्रिमूर्ति,' खजुराहो के 'मिथुन', जावा के 'प्रजापरमिता' को जिन शिल्पियों ने गढ़ा था, उनके नाम तक तो हम जानते नहीं।'

माधवी में एक सहज स्वाभाविक बुद्धि थी। झट-से बोली, 'जिनके नाम जानते हो, उन्हीं की बात सुनाओ।'

'माइकेल एँजलो की सृष्टि पर मैं मोहित हूँ। उन्हें सबसे बड़ा बताने का लोभ मन को होता है,' दीनबन्धु बोले थे।

माधवी में उत्साह की कमी नहीं थी। पूछा, 'वह कहाँ के रहने वाले थे? कब जन्मे थे? उन्होंने क्या-क्या काम किया था?'

फिर सब जान लेने के बाद बोली, 'माइकेल की पत्नी के बारे में कुछ कहो। उनकी पत्नी क्या अब भी जीवित है?

'धत्! यह कैसे हो सकता है? चार-पाँच सौ साल तक कोई जिन्दा भी रह सकता है भला!' फिर कुछ रुक कर बोले।

'तो तुम्हें सच बात बतानी पड़ेगी। तो सुनो! कई फालतू निखट्टू रिश्तेदार माइकेल एँजेलो के मत्थे खाते थे। शादी उन्होंने की नहीं थी। लेकिन लोगों को वह कहते थे, 'मेरी शादी मेरी कला के साथ हो चुकी है—मेरी कृतियां ही मेरी सन्तान हैं।' तुम समझ सकती हो मैंने तुम्हें झूठ नहीं कहा है।'

माधवी दुःख से बोलती, 'अहा, बेचारा!'

दीनबन्धु बोले थे, 'मैं तुम्हारा बड़ा आभारी हूँ माधवी! तुम्हारा आत्मविश्वास मुझे हिम्मत और भरोसा दिलाता है।'

उस दिन के दीनबन्धु ने कोई झूठ नहीं कहा था, उसकी गवाही आज के दीनबन्धु देंगे। उस दिन का अप्रसिद्ध शिल्पी माधवी की स्नेह-छाया में ही आज का इतना महान कलाकार बन पाया था।

क्या ही परीक्षा के दिन थे वे! कभी-कभी दीनबन्धु को लगता, अब वह टूट जाएँगे। कला की साधना छोड़ कर कलाकार दीनबन्धु शायद अब चाकर दीनबन्धु बन जाएँगे। उन्होंने एक चाकरी जुटा भी डाली थी। आर्किटेक्ट के दफ्तर में माडलर का काम था।

पर माधवी राजी नहीं हुई, 'हर्गिज नहीं! मैं तुम्हें नौकरी नहीं करने दूंगी।'

माधवी ने कड़ा प्रतिवाद किया था, 'तुम ने ही तो मुझे बताया था कि जो लोग शुरू के दिन मे कष्ट झेलते हैं, बाद में उनके हिस्से मे बडा सुख लिखा होता है।'

बबुआ के जन्म के बाद ही दीनबन्धु ने नौकरी खोजनी शुरू कर दी थी। पर माधवी ने साफ कहा था, 'रत्ती भर के इस बच्चे के एक कटोरे दूध के लिए तुम्हे पानी मे डुबकी लगाने की जरूरत नही।'

दीनबन्धु ने गौर किया था, माधवी के मन में कहीं कोई कृतज्ञता थी। कभी-कभी उन्हें लगता जैसे माधवी अपने को उनकी सहधर्मिणी या उनका साथी भी नही समझती थी। लगता था जैसे महाजन दीनबन्धु से उसने ढेर-सारा कर्ज लिया हो और उस कर्ज को उतारने के लिए अपनी सारी ताकत जुटा रही हो।

दीनबन्धु के मन में कई बार आया कि वह पूछें कि वह पति से क्यों कभी कुछ भी नही मांगती।

माधवी दीनबन्धु की असमर्थता के प्रति सजग थी, क्या इसीलिए उसने कभी कुछ नही चाहा। हर समय कर्तव्य और विवेचना का बोध दीनबन्धु को अच्छा नही लगता था। अगर माधवी थोड़ी नासमझ होती, उन पर थोड़ा हक जताती, थोडा दावा करती तो उनको अच्छा ही लगता।

पर उस समय दीनबन्धु कितने मूर्ख थे। आज के दीनबन्धु से अगर उस दिन के दीनबन्धु की भेंट होती तो वह इस अप्रिय सत्य को उगल ही जाते।

जिस तरह से उनके दिन गुजर रहे थे, बाकी के दिन भी उसी तरह गुजर जाते तो दुनिया का क्या बिगड़ता? सुप्त माधवी की ओर देखकर दीनबन्धु ने ईश्वर से कातर प्रार्थना की। दुनिया के लालची लोग न जाने ईश्वर से क्या-क्या मांग कर उन्हे तंग करते हैं, पर माधवी ने तो उनसे कुछ नही मांगा था। जो कुछ उसे मिला था, वह उसी को ले कर सुखी थी। फिर भी ऐसा क्यो हुआ? बबुआ को दे कर भी उन्होने क्यो उसे छीन लिया?

दीनबन्धु की इच्छा हुई कि वह अभी इसी क्षण माधवी को नींद से

जगा कर कहें, 'माधवी देखो, तुम मुझे जैसा समझती हो, मैं वैसा नहीं हूँ। देखो, ईश्वर के प्रति मैं भी अभियोग प्रकट कर रहा हूँ। हृदय से उनके अन्याय का प्रतिवाद कर रहा हूँ।'

लेकिन यह क्या? अचानक माधवी ने आँख खोलीं। वह इस तरह से उन्हें क्यों देख रही थी?

'माधवी' कह कर दीनवन्धु चीखने ही जा रहे थे कि वह दूसरे ही क्षण समझ गए कि माधवी ने नींद में ही आँखें खोल ली थीं।

माधवी ने फिर आँखें मूंद लीं। पर दीनवन्धु के मन में एक भय-सा हुआ। माधवी की आंखों में उन्होंने अविश्वास और सन्देह की छाया देखी।

'मैं क्या कर सकता हूँ? दोष तो विधाता का है। विश्वास करो माधवी, प्लीज!' दीनवन्धु ने आहिस्ते से मन-ही-मन कहा।

पर माधवी की नींद टूटी नहीं। पांच वर्ष के बेटे के सोने के पुतले-जैसे शरीर को भस्म कर जिस रोज दीनवन्धु घर लौटे थे, उसके बाद तो बहुत दिन बीत चुके थे। एक दिन, दो दिन, एक महीना, दो महीना, एक साल, दो साल कर बहुत-से साल गुजर चुके थे।

'माधवी, माधवी मेरी! प्लीज सुनो—समय नाम की भी एक चीज है। एक निर्दिष्ट समय के बाद बहुत-सी बातों को दुबारा उठाया नहीं जाता।' दीनवन्धु बड़े कातर भाव से बोले।

माधवी की ओर से कोई उत्तर नहीं आया था।

'एक बात बताओ माधवी, अगर तुम्हें कुछ कहना था तो तुमने उस दिन क्यों नहीं कहा?' मन-ही-मन दीनवन्धु ने माधवी से पूछा, 'बल्कि तुमने तो बड़े ही आश्चर्यजनक रूप से अपने शोक पर काबू पा लिया था। मैं तो सोच भी नहीं सकता था। अपनी औलाद खो कर भी तुम कठोर काठ-सी बनी रहीं। सन्तान से तुमने पति को अधिक बड़ा कैसे माना, माधवी? मैं तो सोचता ही रह जाता था।'

दीनवन्धु उन दिनों की बातें भूले नहीं थे। माधवी ने दीनवन्धु को टूटने से बचा लिया था। बोली थी, 'काम नहीं करोगे तो चलेगा कैसे?'

उसने अपने हाथों से पति को कर्मण्यता के हाथों सौंप दिया था।

दीनबन्धु बुदबुदा कर बोले, 'माधवी तुम यकीन करो, उसके लिए मैं तुम्हारा आभारी हूँ। उस चरम संकट से तुम उस दिन अगर मुझे नहीं उबारतीं तो शिल्पी दीनबन्धु उसी दिन खत्म हो जाता। पर आज इतने वर्षों के बाद तुमने मेरी तरफ इस तरह से क्यों देखा ? मुन्ने की मृत्यु, वह तो बहुत पहले की बात है।

'माधवी, तुम मुझे माफ करना। मेरा काम अभी बहुत बाकी है,' दीनबन्धु के स्वर में कातर असहायता थी। बोले, 'मैं जानता हूँ, २ नवम्बर की बादलों से घिरी उस मनहूस शाम को मृत्यु ने आ कर हमें रिक्त कर दिया था। इतने दिनों तक तुमने अपनी रिक्तता को छुपा कर रखा, पर आज, आज ही क्यों तुमने इस तरह से मेरी ओर देखा ?'





नरम मिट्टी के ढेर और मूर्ति के ढांचे के पास दीनबन्धु सुबह ही से बैठे थे।

पत्थर काटने का काम अभी बाकी पड़ा था। बहुत बड़े पत्थर के टुकड़े से उद्योगपति रमाकान्त बोस की मूर्ति अस्पष्ट-सी निकल आई थी। अचानक देखने पर लगता था मानो चलते-चलते रमाकान्त को किसी ने पत्थर के साथ गोंद से चिपका दिया है और वह उस पत्थर के बन्धन को तोड़ने के लिए छटपटा रहे हैं, पर अपने को छुड़ा भी नहीं पा रहे हैं।

किसी और तरफ ध्यान न दे कर दीनबन्धु ढांचे पर मिट्टी चढ़ाने लगे। थोड़ी देर मिट्टी चढ़ाने के बाद काम रुक गया। वह आगे नहीं बढ़ पा रहे थे।

वह लकड़ी के चाकू को हल्के ढंग से अपने सिर पर ठोकने लगे। काम अटक जाने पर दीनबन्धु सदा ही ऐसा करते थे। यह बुरी आदत उन्होंने अपने गुरु रामपाल से सीखी थी। किसी-किसी दिन तो उनके सिर पर चन्दन की तरह मिट्टी का टीका लग जाता था। और फिर काम करते-करते अनमने होकर वह बाएँ हाथ से पसीना पोंछते तो मिट्टी का टीका और फैल जाता।

आँखें मूंद कर स्मृति के अन्धकारमय संग्रहालय में दीनबन्धु कुछ ढूंढ़ रहे थे। अब उन्होंने आँखें खोल कर ढांचे पर थोड़ी मिट्टी चढ़ाई। उसके बाद वह स्टैण्ड से काफी दूर हट आए, ताकि मूर्ति ठीक से दिखाई पड़े।

नजदीक खड़े रहने पर दीनबन्धु कई बार आयजा नहीं ले पाते थे। दूरी ही कला को और आकर्षक बनाती है।

दूर सरकते ही रमाकान्त की मूर्ति के साथ दीनबन्धु हल्के से टकराए। उन्होंने तुरन्त हाथ जोड़ कर प्रणाम किया, मानो वह किसी जीवित आदमी से टकरा गए हों।

दीनबन्धु को याद आया, रमाकान्त बोस का जन्म-दिवस आने ही वाला था। देशमान्य इस उद्योगपति की मूर्ति उन्हें कुछ ही महीनों में पूरी करनी थी।

बोस एण्ड टामस के कर्णधार रमाकान्त बोस असन्तुष्ट भाव से दीनबन्धु को निहार रहे थे। दीनबन्धु ने मन ही मन सोचा, यह उनके लिए स्वाभाविक ही था। रमाकान्त बोस बड़े अस्थिर स्वभाव के व्यक्ति थे। काम देने के तुरन्त बाद ही काम हुआ या नहीं, पूछने लगते थे। आज अगर वह किसी काम के लिए कह गए हैं तो अगले दिन वह काम हो ही जाना चाहिए। तभी उनको खुश रखना सम्भव था। शायद इसी कारण वह जीवन में इतनी तरक्की कर पाए थे। अंग्रेजी साम्राज्य के स्वर्णिम दिनों में भी यहूदी बच्चों के साथ लड़ कर अपने प्रतिष्ठान को जमा पाए थे रमाकान्त बोस।

दीनबन्धु विचलित नहीं हुए। बड़े आकार की मूर्ति के सामने सीधे खड़े होकर उन्होंने बड़बड़ा कर मूर्ति को याद दिला दिया कि दीनबन्धु रमाकान्त बोस के कोई कर्मचारी नहीं। इसलिए यहाँ उनका हुक्म नहीं चलेगा। जब उनका मन होगा तभी वह पत्थर काटने का काम शुरू करेंगे।

इतना कुछ कह कर दीनबन्धु ने अपने को थोड़ा हल्का सा महसूस किया। फिर अपने काम में जुट गए। दुनिया के कितने ही अनगिनत लोग उनकी स्मृति में अपनी छाप छोड़ गए थे, पर दीनबन्धु सभी को, यहाँ तक कि माधवी को भूलकर एक अस्पष्ट-से नेगेटिव को आँखों की रोशनी के सहारे पूरी तरह देखने की कोशिश में लगे थे।

पर दीनबन्धु किसी भी हालत में उसे पृथक रूप में देख नहीं पा रहे थे। माधवी की गोद में बैठा बबुआ हँस रहा था, यही तस्वीर बार-बार उनकी आँखों के आगे छा रही थी। ये बातें कितनी पुरानी थीं, पर दीनबन्धु

को लगा उन्हें उसी अतीत को स्पष्ट करना होगा।

जो तस्वीर इस समय दीनबन्धु देख पा रहे थे, वह थी माधवी की, जो बबुआ को संभाल नहीं पा रही थी। माधवी बोल रही थी, 'यह तुम्हारे पास आना चाहता है।'

माधवी के शरीर के रक्त और मांस को काट कर कंजूस विधाता ने बबुआ रचा था। बबुआ होने के पहले माधवी की सेहत कितनी अच्छी थी। माडल माधवी के नग्न शरीर को आड़ी नजरों से देख कर जब दीनबन्धु ने शिल्प-साधना की थी तब उन्हें लगा था, माधवी माडलिंग की आदर्श प्रतिकृति है। कहीं से कोई जुम्बिश नहीं। नरम मिट्टी की बनी माधवी के शरीर के सामने चाकू को हाथों में लेकर कितनी ही बार दीनबन्धु ने सोचा था—असम्भव! इसके किसी भी अंग से थोड़ी-सी मिट्टी का मांस उठा लेने का कोई उपाय नहीं। थोड़ी-सी भी छुरी चल जाए तो सामंजस्य नष्ट हो जाएगा।

लेकिन आदि स्रष्टा ने कितनी आसानी से क्रान्ति ला दी। सन्तान-धारिणी माधवी के शरीर में परिवर्तन की लहर आ गई। क्षीण कटि धारिणी माधवी के शरीर का सारा छन्द गर्भिणी माधवी के बीच खो गया। दीनबन्धु की बड़ी इच्छा थी कि वह माधवी के शरीर के इस परिवर्तन के साथ-साथ अपनी बनाई माधवी-मूर्ति में भी परिवर्तन करते जाएँ। लेकिन माधवी उस समय माडल बनने के लिए राजी नहीं हुई थी। बोली, 'तुम्हारी सृष्टि को दुनिया में निरापद लाना ही इस समय मेरे लिए सबसे बड़ा काम है।'

दीनबन्धु मुस्करा कर बोले, 'माडल को पत्नी बनाया जा सकता है, लेकिन पत्नी को माडल बनाना कभी सम्भव नहीं।'

माधवी बोली, 'काम बड़ा आसान है—मेरी उस मूर्ति में मन भर मिट्टी थोप दो। कैसी बैलून जैसी फूल गई हूँ!'

पर वह बैलून धीरे-धीरे पिचक गया। माधवी के जीर्ण शरीर को रूप देने के लिए दीनबन्धु को माधवी की मूर्ति पर से काफी देर तक मिट्टी खरोंचनी पड़ी। माँ की गोद से बबुआ छलांग मार कर उतरना चाहता था। बबुआ के दूध के दांत दीनबन्धु मानो स्पष्ट देख पा रहे थे। अपने

विचित्र लहजे में बबुआ मानो कुछ बोल भी रहा था।

माधवी बबुआ को रोकने की कोशिश कर रही थी। बोल रही थी, 'नहीं, अभी पिताजी के पास नहीं जाना है। अभी उन्हें काम करने दो।'

दीनबन्धु का काम करने का जरा भी मन नहीं था। उन्हें बबुआ से बातें करने का मन हो रहा था। और आज इस समय वह बबुआ के नाक, कान, मुंह, आंखें, केश हर अवयव को याद करने की साधना में लीन थे।

माधवी अब अपने को थोड़ा संभाल चुकी थी। वह कल की घटना शायद भूलने की कोशिश कर रही थी। कमरे से उठ कर वह सीधे स्टुडियो आई। बोली, 'तुम इतने चुपचुप क्यों हो, जी ?'

'नहीं तो!'

माधवी असहाय-सी बोली, 'मुझे क्या हो गया था, बताओ तो ? अचानक ही तबियत काबू से बाहर हो गई थी।'

'तुम्हें कुछ भी तो नहीं हुआ था!' दीनबन्धु ने माधवी को समझाने की कोशिश की।

'कुछ तो हुआ ही था। सिर में असह्य दर्द था। उसके बाद लगा पेट से एक दर्द धीरे-धीरे ऊपर की तरफ उठ कर मुझे बेचैन रहा है।'

'वह दर्द का अनुभव जीवन में एक ही बार हुआ था, बहुत पहले,' बोलते-बोलते माधवी का चेहरा पीला पड़ गया। दीनबन्धु समझ गए कि माधवी बबुआ के जन्म-क्षण की बात कह रही थी। प्रसंग बदलना जरूरी था।

माधवी ने अब दीनबन्धु के पास रखे स्टैण्ड की तरफ देखा। बोली, 'किसी का बस्ट बना रहे हो ?'

'हां,' दीनबन्धु बोले।

उन्होंने सोच लिया कि इससे अधिक इस समय वह कुछ बोलेंगे भी नहीं। इसे बिलकुल छुपा कर रखेंगे। उसके बाद एक दिन माधवी को चौंका देंगे। माधवी को समझा देंगे कि दीनबन्धु के लिए माधवी के अवचेतन में जो भावना है, सही नहीं है। पत्थर पर काम करते रहने पर भी उनके पति का दिल पत्थर का नहीं बन गया है। वह बबुआ को भूले

नहीं हैं।

फिर भी दीनबन्धु को डर लग रहा था। माधवी अगर कल की तरह अन्तर्भेदी दृष्टि से देखेगी तो दीनबन्धु के लिए काम करना मुश्किल हो जाएगा। जिन हाथों से वह भीषण पाषाणों को अपनी बात मनवाने पर मजबूर कर सकते हैं, दीनबन्धु के वही हाथ अक्षम हो जाएंगे।

माधवी के वहाँ से चले जाने पर दीनबन्धु ने चैन की साँस ली। लेकिन कभी ऐसा दिन भी था जब यदि माधवी बीच-बीच में न आती, तब दीनबन्धु के लिए काम करना मुश्किल हो जाता था।

पास ही में जननेता (नाम बताने की आवश्यकता नहीं) जिन्हें हम देशमित्र के नाम से जानते हैं, की प्लास्टर की मूर्ति रखी हुई थी। दीनबन्धु के किसी शुभैषी ने उन्हें यह काम ला कर दिया था। बोले, 'इसे अच्छी तरह बनाना। तुम्हारा नाम होगा। उनकी प्रतिष्ठा है। इसके चलते दूसरे नेताओं का भी काम मिल जाएगा।'

सुन कर दीनबन्धु को गुस्सा आ गया। बोले थे, 'सच्चा कलाकार हमेशा हर काम को अच्छी तरह से ही करता है। हर काम में वह अपने को उँड़ेल देता है।'

देशमित्र को आठ दिनों तक बहुत पास से देखने का सौभाग्य दीनबन्धु को मिला था। अपने बहुत सारे चमचों को लेकर ही वह हर रोज सिटिंग देने आते। मूर्ति बनाते समय दीनबन्धु अपने को खो देते थे। लेकिन मूर्ति बनाने के बाद वह उनके भक्तों को पसन्द नहीं आई। बोले, 'यह कैसी मूर्ति बनी है? भविष्य में लोग इस मूर्ति को देख कर मुँह बिचकाएंगे।'

कलाकार की सबसे बड़ी परीक्षा यही है। जिसकी मूर्ति बनाई गई है, उनकी पत्नी, या उनके भक्तों को संतुष्ट करने का सौभाग्य बहुत कम कलाकारों को प्राप्त होता है।

उस समय दीनबन्धु को यह मालूम नहीं था। सोचते थे, यह दुर्भाग्य सिर्फ उन्हीं का है। बाद में उन्हें पता चला था कि मूर्तिकार के जीवन में यह कोई नई घटना नहीं थी। शिल्पगुरु रोंदा ने दुनिया के श्रेष्ठ उपन्यासकार बालज़ाक की जो मूर्ति बनाई थी वह लोगों को पसन्द नहीं आई थी।

एप्स्टाईन के भाग्य मे भी बार-बार यही दुख लिखा था। लेकिन उससे शिल्प का क्या आया गया? रोदा के बालजाक, एप्स्टाइन के आस्कर वाइल्ड क्या इनसे छोटे साबित हो गए? कभी-कभी डर लगता है, माइकेल एंजेलो ने मेदचि कुल के स्वर्गीय कीर्तिमान-पुरुष लारेंजो की जो अनश्वर मूर्ति बनाई थी, वह अगर जीवित होते तो उन्हे भी शायद अपनी मूर्ति पसन्द नही आती। इतिहास के लारेंजो दी मैगनिफिसेण्ट मूर्तिकार की छैनी से और भी मैगनिफसेन्ट बने थे, उसे प्रमाणित करने के लिए कई शताब्दियों की जरूरत पड़ी थी।

उस रात की बात दीनबन्धु कभी नही भूल सकते। उनके जीवन मे वह एक संकट का मुहूर्त था। माधवी ने पूछा था, 'क्या बात है? इतने गुमसुम क्यो हो?' माधवी को अपनी समस्या बताते हुए दीनबन्धु बोले थे, 'इस समय मैं जो निर्णय लूंगा, उसी पर मेरे सारे शिल्प का भविष्य निर्भर करता है।'

माधवी बोली थी, 'मैं अनपढ हूँ। इतना कुछ समझती-बूझती भी नही। लेकिन इतना समझती हूँ कि तुम्हारे शिल्प का भविष्य अलग-तो नही।'

दीनबन्धु का चेहरा चमक उठा था। बोले, 'माधवी, तुम्हारे प्रति मैं वाकई बहुत कृतज्ञ हूँ। तुमने मुझे सही रास्ता दिखाया है। शिल्प को छोड कर मेरा दूसरा कोई भविष्य नही हो सकता।'

फिर गहरी वेदना के साथ दीनबन्धु बोले थे, 'दुनिया के अधिकतर लोग या उनके रिश्तेदार या फिर उनके प्रशंसक मूर्तिकार से चाटुकारिता की उम्मीद रखते हैं। वे चाहते हैं कि मूर्तिकार उनकी मर्जी की माफिक मूर्ति को पवित्र, सुन्दर और महान बनाए।'

माधवी बोली, 'इस मांग मे हैरान होने की कोई बात नही है।'

'लेकिन मांगने से ही देना पड़ेगा, ऐसा भी तो कोई कानून नही है। आदमी महाकाल के सामने झूठ बोलने के लिए मूर्तिकार नही बनता है!' दीनबन्धु का स्वर गूँज उठा।

माधवी कुछ समझी नही। वह दीनबन्धु की तरफ देखती रह गई।

दीनबन्धु बोले, 'मुझे दो घटनाएं याद आती है, माधवी! मास्टर

साहब से सुना था, हेनर नाम के एक यशस्वी कलाकार ने किसी धनी बुढ़िया की मूर्ति बनाई थी। वृद्धा को वह मूर्ति पसन्द नहीं आई। उसके अनुसार उसने पूरी कीमत चुकाई थी, इसलिए चीज उसकी मर्जी-माफिक होनी चाहिए थी। मूर्ति को वापस करती हुई वृद्धा बोली थीं, 'यह मूर्ति मुझ-जैसी नहीं है।' हेनर ने गम्भीर हो कर जवाब दिया था, 'श्रीमतीजी, कभी आपके उत्तराधिकारी हेनर की सृष्टि को एक अपूर्व कलाकृति के रूप में पा कर अपने को धन्य मानेंगे। आप ठीक इसी मूर्ति की तरह थीं या नहीं, इस बात को लेकर माथापच्ची नहीं करेंगे।'

माधवी बोली, 'इस बात में अहंकार की बू आती है।'

माधवी सच्चे अर्थों में सहचरी थी।

'तुमने ठीक पकड़ा है माधवी,' दीनबन्धु बोले। 'दूसरी तरफ लारेंस मैकडोनाल्ड को देखो। अपने युग के वह बड़े प्रिय मूर्तिकार थे। इंग्लैण्ड के नामी-गरामी लोग पत्थर की अपनी मूर्तियां बनाने के लिए उन्हें ढेर सारे रुपए देते थे। पर आज उनकी कोई कीमत नहीं रही। उन्होंने पत्थर पर बड़े निर्लज्ज ढंग से अपने ग्राहकों की खुशामद की। वे सभी के सभी इतने महान लोग थे कि कोई बच्चा भी उन मूर्तियों को देख कर बोल देगा कि मैकडोनाल्ड भरोसे के लायक नहीं।'

दीनबन्धु ने आगे कहा था, 'माधवी, मैं तुम्हारा आभार प्रकट कर सकूं, ऐसी भाषा मैं नहीं जानता। मैं सौन्दर्य को ढूंढ़ता फिरूंगा, फिर भी किसी अमीर के मनोरंजन के लिए मिथ्याचार नहीं बरतूंगा।'

देशमित्र के भक्तवृन्दों ने दीनबन्धु पर बाद में भी आक्रमण किया था। इस पर दीनबन्धु बोले थे—'इस मूर्ति में मैंने देशमित्र की चारित्रिक विशिष्टताओं को स्थापित करने की कोशिश की है।'

देशमित्र के माडल की तरफ इशारा कर दीनबन्धु बोले थे, 'सिर के ऊबड़-खाबड़ हिस्से को देखिए—मानो आश्विन की सर्वनाशा आंधी से ध्वस्त कोई गांव—यह प्रमाणित करता है कि वह विद्रोही हैं। सिर पर वलि रेखा है, थके-हारे किसी विद्रोही का ही चेहरा है वह। गला थोड़ा मोटा है, देशमित्र को अगर कोई ध्यान से देखे तो यह त्रुटि साफ-साफ दीखती है। त्रुटि कही जाए या उनकी विशेषता—वह बड़े ही जिद्दी

है। किसी काम के पीछे पड़ जाने पर उसे पूरा करके ही छोड़ते है। किसी जिद के कारण सिर थोड़ा झुकाए हुए हैं। आने वाले कल के लोग समझ सकते हैं कि वह किसी अन्याय के विरुद्ध कैसे प्रतिवाद करते थे।"

लेकिन देशमित्र के भक्तो को वह मूर्ति पसन्द नही आई थी। वे बोले थे, "यह कोई मूर्ति बनी है ? बिल्कुल बकवास, बदशक्ल !"

दीनबन्धु का जवाब था, "मूर्ति मैं नही बदलूंगा। अगर लेने की इच्छा न हो तो, न लें।"

मूर्ति उन लोगो ने नही ली। माधवी के सान्निध्य मे दीनबन्धु ने अपने को सम्हाल लिया था, पर 'बदशक्ल' शब्द उनके मन में चुभ-सा गया था।

उसके बाद से तो कई दिनों तक दीनबन्धु सुन्दर और असुन्दर के मूल्यांकन मे जुटे रहे। सारी जिन्दगी के अनुभव ने उन्हे यही समझाया कि कला के क्षेत्र मे जिसके पास चरित्र है, वही सुन्दर है, जिसके पास कोई चरित्र नही, जिसके बाहर या अन्दर से किसी सत्य का आभास नही मिलता, वही असुन्दर है।

आज भी इस मुहूर्त में मिट्टी की लोई हाथो मे लेकर दीनबन्धु सुन्दर और सत्य का आह्वान कर रहे थे, पर आज दीनबन्धु कुछ भी नही पकड़ पा रहे थे। आज का दिन, दीनबन्धु की साधना के इतिहास मे शायद सबसे असफल दिन था।

काम बन्द कर दीनबन्धु थोड़ी देर तक चुपचाप बैठ गए। उनकी अपनी औलाद जिसे वह इतना प्यार करते थे, आज वह क्यों नही पकड़ मे आ रही थी ?

दीनबन्धु प्रकाश के लिए दर्द का अनुभव कर रहे थे। उनको याद आ रहा था, बबुआ अपनी माँ की गोद से उनके पास आना चाहता है। अगर उस समय का वह एक फोटो रखते तो बुद्धिमानी का काम करते और इस तरह से आज अन्धेरे में उन्हें गोता नहीं लगाना पड़ता।

लेकिन वह उस समय फोटो खिंचवाते भी कैसे ? उन दिनों तो रोजमर्रे की जिन्दगी चलानी भी मुश्किल थी। फोटो की तो बात ही नही उठ सकती थी।

फिर भी दीनबन्धु ने एक बार बबुआ का फोटो खिंचवाने का प्रस्ताव रखा था, पर माधवी मुकर गई थी। बोली थी, "उन पैसों से तुम्हारे काम का एक-आध औजार खरीदा जा सकता है। फोटो खिंचवाने का समय कुछ खत्म तो हो नहीं गया है।"

लेकिन समय सचमुच ही खत्म हो गया। कितनी जल्दी सब कुछ खत्म हो गया। अन्त का भी कोई अन्त होता है, दीनबन्धु का ऐसा ही कुछ ख्याल था। पर वहां भी दीनबन्धु ने गलती की थी—इतने दिनों के बाद पुराना घाव हरा हो रहा था।

कितने दिन पहले की बात है—लेकिन दीनबन्धु को लग रहा था, मानों कल की ही बात है, जब वह बबुआ को हमेशा के लिए विदा दे कर घर लौटे थे। शहर के एकान्त में अन्धेरी गली का अन्धकारमय वह घर और आज का घर एक-जैसा नहीं है। सफलता ने आ कर दीनबन्धु के पैर चूमे थे। अपनी जिद पर अड़े रहने के बावजूद कलाकार दीनबन्धु व्यर्थ नहीं हुए थे, लेकिन माधवी का जीवन तो अपूर्ण रह गया।

पिछले कई वर्षों में दीनबन्धु ने कई अच्छी कला-कृतियों का निर्माण किया था। पर आज उन्हें लग रहा था, वे सारे बेकार के काम थे—असल काम तो बाकी रह गया था। मूर्तिकार दीनबन्धु ने रात-दिन एक करके संगमरमर, पत्थर और कांसे पर कितने ही लोगों के शोक को शान्त किया था, कितनों की स्मृति अक्षय बनाई थी, पर कर्त्ता की अपनी ही छत टूटी पड़ी थी। बबुआ के लिए उन्होंने कुछ भी नहीं किया था। या उससे भी पहले का वह महाअपराध ? दीनबन्धु चौंक उठे।

दीनबन्धु शायद उसी समय दौड़ते हुए जा कर माधवी को बोलते, "माधवी, मुझे माफ करना। विश्वास करो, मेरी कोई गलती नहीं थी !"

लेकिन इसी बीच बाहर दरवाजे की घण्टी बज उठी। जरूर रेखा आई होगी ! उनको लगा अगर वह आज रेखा को न आने के लिए कह देते तो अच्छा रहता। आज अपना सारा काम बन्द रखते तो ठीक रहता। लेकिन रेखा को भी तो रुपयों की जरूरत थी।

"रेखा, आज तुम बड़ी गुम-सुम दिख रही हो। क्या बात है ?" दीनबन्धु ने पूछा।

रेखा बोली, "नहीं, ऐसी कोई बात नहीं।"

रेखा सम्पूर्ण नग्न हो कर स्टूडियो में आई थी। पूछा "वेदी पर बैठूं?"

"जैसी तुम्हारी मर्जी"—दीनबन्धु काम शुरू करने के पहले बोले।

"किसी एक जगह पर नहीं बैठने से दिक्कत नहीं होगी?" देवीदास ने पूछा।

रोदां अक्सर अपने स्त्री या पुरुष-माडलों को अपनी मर्जी के अनुसार चलने-फिरने के लिए कहते थे। वह चुपचाप खड़े हो कर देखते रहते। कोई खास अदा या भंगिमा पसन्द आने पर कहते, 'स्टैच्यू!' माडल उसी वक्त उसी अवस्था में खड़ा हो जाता और रोदां झट से पेंसिल में उस अदा को उतार लेते।

रेखा स्टूडियो के कमरे में चल-फिर रही थी। दीनबन्धु उसके अनावृत शरीर की नरम मांसपेशियों की गतिविधियों पर नजर गड़ाए हुए थे। शिल्प के माध्यम से इस गति को समझना एक कठिन साधना है। गति है क्या? एक अवस्था से दूसरी अवस्था में पहुँचने का पहला क्षण। शरीर का प्रत्येक अणु-परमाणु उस समग्र शरीर को गति देने में सहायता करता है।

विक्टर ह्यूगो ने नारी-शरीर को शिल्प का आदर्श माडल कहा था। इस दृष्टि से भी दीनबन्धु ईश्वर की पाँचों अंगुलियों की स्पष्ट छाप देख पा रहे थे। रेखा थोड़ी पीछे की तरफ झुक कर खड़ी थी। दीनबन्धु सहसा अपने विद्यार्थी से बोले, "देखो-देखो, देवीदास!"

"रेखा थोड़ी देर तक तुम इसी मुद्रा में खड़ी रहो!" दीनबन्धु ने मिट्टी की मूर्ति को छोड़कर स्केचिंग के लिए कागज और पेंसिल निकाली। फिर देवीदास से बोले, "मैं चाहूँगा तुम इसी मुद्रा की एक मूर्ति बनाओ। रोदां कहते थे, 'नारी का धड़ तक का शरीर एक कली है—उस कली से सर, जूड़े और स्तन-कलश के पद्म खिलते हैं।' और शरीर को देखो। मानो धनुष में तीर कसा हुआ है—इस तीर से ही प्रेम के देवता [illegible] करते हैं।"

"आप कुछ नहीं बनाएँगे?" देवीदास ने पूछा।

"मेरी दृष्टि एकाग्र नहीं हो पा रही है, देवीदास ! रेखा में कल मैंने जो कुछ देखा था, आज वह खो गया है। आज लग रहा है, कल जो कुछ बनाया था, वह गलत था। उसे तोड़ना पड़ेगा।"

देवीदास ने रेखा की कल वाली मूर्ति को तोड़ कर फिर से मूर्ति बनाने की सलाह अपने गुरु को दी। पर दीनबन्धु इतना सब कुछ करने की मन:स्थिति में नहीं थे।

"रेखा में आज आप क्या देख रहे हैं, मास्टर साहब ?"

"आज उसमें शंका दिखाई दे रही है। अनिश्चित आशंका सौन्दर्य को नष्ट कर देती है, देवीदास !"

दीनबन्धु को इस समय बातें करना भी अच्छा नहीं लग रहा था। रेखा को छुट्टी देकर वह बबुआ के पास लौटना चाहते थे। बबुआ की अस्पष्ट मूर्ति उन्हें बार-बार पुकार रही थी। लेकिन उन्हें लग रहा था जैसे दुनिया के सभी लोग षड्यन्त्र रच कर आज उन्हें बबुआ से दूर ले जा रहे थे। बाहर दरवाजे पर फिर घण्टी बज उठी।

दीनबन्धु ने रेखा को बुलाया। बोले, "थोड़ी देर रुको। यह लो अपने रुपये। पूरे सप्ताह के हैं। इस सप्ताह और आने की जरूरत नहीं। लेकिन याद रखना, अनावश्यक चिन्ता चेहरे की सुन्दरता को विनष्ट कर देती है। मनुष्यों के सारे सौन्दर्य को नष्ट करने के लिए ही शैतान ने दुश्चिन्ता को दुनिया में भेजा है।"





"वे लोग आ गए हैं," देवीदास ने आकर कहा।

"जनरल इंडस्ट्रीज के पी० आर० ओ० मिस्टर चटर्जी और उनके साथी। उनके जी० एम० भी उनके साथ आए है।"

दीनबन्धु को याद आ गया, कुछ दिन पहले इस कम्पनी ने उनके पास एक प्रस्ताव भेजा था। वे लोग जनरल इंडस्ट्रीज के मालिक मिस्टर सेन की पत्नी की एक कांसे की मूर्ति बनवाना चाहते थे।

"नमस्ते मिस्टर घोष!" पी० आर० ओ० मिस्टर चटर्जी बोले।

दीनबन्धु ने भी हाथ जोडकर प्रतिनमस्कार किया।

जन-सम्पर्क अधिकारी ने कहा, "हमारे कारखाने को केन्द्र बनाकर जो नया शहर बना है, वही पर हम लोग मूर्ति की स्थापना करना चाहते हैं।"

"कौन-सी जगह है?" दीनबन्धु ने पूछा।

"शहर का नाम बदलकर नया नाम 'सुतपा नगर' रख रहे हैं। सुतपा नगर के ठीक बीच मे जो पार्क है, उसी जगह पर यह मूर्ति स्थापित की जाएगी। इसके लिए हम चन्दा भी इकट्ठा कर रहे हैं। कर्मचारी लोग स्वेच्छा से चन्दा दे रहे हैं।'

दीनबन्धु की इच्छा थी कि यह काम वह थोड़े दिनो के बाद हाथ मे लें।

पर ऐसा करना मुश्किल था, क्योंकि लेडी सुतपा सेन विलायत जा रही थीं। उसके पहले सिटिंग का काम खत्म करना ही था।

"आपने जो रकम माँगी है, वह कमेटी ने मंजूर कर ली है। राष्ट्र-पिता की जो मूर्ति आपने बनाईं थी, उस पर हम फिदा हैं।"

"दीनबन्धु ने यह काम थोड़े दिनों के वाद शुरू करने का आग्रह किया, पर वे लोग नहीं माने। "लेडी सुतपा की उम्र भी ढल रही है, यह आपको नहीं भूलना चाहिए। आदमी की वात, कब है, कब नहीं, कुछ नहीं कहा जा सकता।"

दीनबन्धु अन्ततोगत्वा मान ही गए। उन लोगों ने उनको सेन की कोठी में जाकर सिटिंग लेने के लिए कहा था, पर दीनबन्धु ने कहा, "कलाकार के स्टूडियो में वड़े-वडे लोगों के पैरों की धूल पड़ती रहती है। सुतपा देवी अगर यहाँ आ सकीं तो अच्छा रहेगा। हाँ, यदि वह अस्वस्थ हैं तो वात दूसरी है।"

लेडी सुतपा चूँकि वीमार नहीं थीं, इसलिए दूसरे दिन से वह स्वयं सिटिंग के लिए आएंगी, ऐसा तय पाया।

"यह हैं हमारे चेयरमैन की धर्मपत्नी एवं हमारी शिल्प-संस्था की प्राण—लेडी सुतपा सेन और यह हैं मूर्तिकार दीनवन्धु घोष," पी० आर० ओ० ने रस्मी परिचय करवाया।

सभी के सामने उन दोनों में नमस्कार का आदान-प्रदान हुआ।

पी० आर० ओ० ने कहा, "हम चाहते हैं कि आप एक ऐसी मूर्ति वनाएँ, जो आपके कलाकार जीवन की श्रेष्ठ शिल्प-साधना हो।"

"मेरे हाथों में कुछ नहीं है। अगर ईश्वर ने चाहा, तो ऐसा ही होगा," दीनवन्धु ने यह वात अपने हृदय से कही।

"एक सिटिंग में तकरीवन कितना समय लगेगा?"

"कुछ नहीं कहा जा सकता। अगर उन्हें जल्दी हो तो वह जब चाहें, जा सकती हैं।"

"नहीं-नहीं, हमें कोई जल्दी नहीं। शिल्पी जितनी देर चाहेंगे, मुझे समय देना पड़ेगा," श्रीमती सेन वोलीं, "कला एक साधना है, सुमन्त!"

लेडी सुतपा ने जनसम्पर्क अधिकारी को याद दिलाया।

सभी ने सहमति प्रकट की, "सचमुच कला में भी कहीं समय का हिसाब-किताब होता है?"

"लेकिन आपकी तबियत? काफी देर तक एक ही मुद्रा में बैठना पड़ेगा।" कइयों ने चिन्ता प्रकट की।

लेडी सुतपा सेन ने उन लोगों को चिन्ता करने के लिए मना किया। उसके बाद फोटोग्राफर ने आगे बढ़कर मूर्तिकार दीनबन्धु और उनकी कला के विषय सुतपा देवी का एक फोटो खींचा।

लेडी सुतपा ने अब सभी लोगों को चले जाने का गम्भीर भाव से आदेश दिया। बोली, "गाड़ी यहीं रहेगी ही। मैं समय पर घर पहुँच जाऊँगी।"

दीनबन्धु ने देवीदास को भी छुट्टी दे दी। उसके बाद वह लेडी से ा को लेकर धीरे कदमों से स्टुडियो में आए।

दीनबन्धु ने अन्दर से दरवाजा बन्द कर लिया।

"अन्दर बड़ा अन्धेरा है," सुतपा बोली।

"अन्धकार अभी दूर हो जाएगा।" दीनबन्धु ने बिजली का बटन दबाया। तेज प्रकाश से सारा कमरा जगमगा उठा।

"मैं और भी साड़ियाँ अपने साथ लाई हूँ। जरूरत पड़ने पर बदल सकती हूँ," सुतपा समय बर्बाद न कर झटपट बोल गई।

"आप उस कुर्सी पर बैठिए।"

'आप बैठिए,' बोलते समय दीनबन्धु के होंठ काप गए।

तो क्या इतनी देर तक ये दोनों लोगों के सामने अभिनय करते रहे थे?

प्रकाश को साक्षी मानकर दीनबन्धु और सुतपा दोनों ही थोड़ी देर तक एक-दूसरे की तरफ चुपचाप देखते रहे। निस्तब्धता के इस बर्फ के टुकड़े को कौन तोड़े? दोनों ही मानो भाषा खोकर युग-युगान्तर से एक-दूसरे के आमने-सामने खड़े थे।

दीनबन्धु कुछ बोलना चाहते थे, फिर उन्होंने चुप रहना ही ठीक समझा।

सुतपा सेन रानी की तरह ही सिंहासन पर बैठीं। और तब वर्फ गलनी शुरू हुई। सुतपा खुद ही बोली, "आप कैसे हैं, दीनू दा ?"

प्रकाश को सुतपा पर फोकस करते हुए दीनबन्धु गम्भीर भाव से बोले, "जहाँ तक मुझे याद है, तुम मुझे 'तुम' कहा करती थी।"

"कितने वर्ष पहले की बात है! पर अभी तक तुम्हारा गुस्सा नहीं गया, दीनू दा ?"

"मैंने सुना था कि लेडी सुतपा सेन हमारे स्टुडियो में आ रही हैं। पर रमा, सुतपा बन गई है, यह मैं कैसे जानता ?"

स्टुडियो की तेज रोशनी में सुतपा की कजरारी आँखें बन्द-सी होने लगीं।

"उस रमा और आज की सुतपा में बहुत वर्षों का व्यवधान है। तुम्हें सब कुछ याद है, दीनू दा ?" सुतपा ने फुसफुसा कर पूछा।

"इस समय याद न रहे, इसी की कोशिश कर रहा हूँ। मुझे लेडी सुतपा सेन की मूर्ति का माडल बनाना है। उस मिट्टी की मूर्ति से प्लास्टर का ढाँचा बनेगा और फिर प्लास्टर से गलाए हुए कांसे में लेडी सुतपा की अक्षय मूर्ति बनेगी। इस समय मुझ पर काम का बहुत भार है। यह मेरे उद्वेलित होने का समय नहीं।"

दीनबन्धु जो कुछ बोल रहे थे, उसमें कोई छल-कपट नहीं था।

दीनबन्धु ने स्टैण्ड पर ढांचा बना कर रखा। उसके बाद बोले, "रमा, अपना चेहरा मेरी तरफ से हटा कर क्या उधर दीवार की तरफ करोगी ?"

"भिन्न-भिन्न कोणों से मुझे देखोगे, यही न ?" सुतपा बोलीं, "उसके लिए तुम्हें बहुत समय मिलेगा। इस समय थोड़ी बातें ही कर लें। आज-कल तुम्हारा कितना नाम है। न्यूयार्क के मैट्रोपालिटन म्यूजियम तक में तुम्हारी कला पहुँच चुकी है।"

"सारी जिन्दगी काम तो कुछ कम नहीं किया है। उनके लिए भी तो कहीं आश्रय चाहिए।" दीनबन्धु बोले।

"दीनू दा, तुम बाद में मुझे अच्छी तरह देख लेना। इस समय जरा मेरी बात सुनो। मेरी क्या इच्छा है, जानते हो ? मुझे लेकर तुम एक

ऐसा काम करो, जो तुम्हें हमेशा जिन्दा रखे।"

दीनबन्धु को हँसी आ रही थी। याद आ रहा था, कभी रमा को उन्होंने स्वयं ही कहा था, "रमा, मेरा स्वप्न क्या है, जानती हो? तुम्हें सामने बैठा कर एक ऐसी मूर्ति बनाऊँगा, जो हम दोनों को अमर कर देगी।"

रमा को भी यह बात याद थी। बोली, "कभी यह प्रस्ताव तुमने ही मेरे सामने रखा था!"

बहुत देर हो चुकी थी। पर सोची सुनपा को यह सब कहने का क्या फायदा?

सुनपा के मन में शायद कोई शक था। वह संकोच से बोली, "आर्डर से शायद कभी कोई बड़ा काम नहीं होता। है न? तुम्हीं ने एक बार बताया था।"

"उस समय तुम्हें जो कुछ कहा था, गलत कहा था, रमा!"

दीनबन्धु का जवाब सुनकर रमा चौंक उठी।

रमा का विस्मय दीनबन्धु से छिपा नहीं रहा। फिर भी सहज भाव से वह बोलते गए, "उस वक्त मेरी उम्र कम थी, बहुत-कुछ नहीं जानता था। बाद में ही मैं जान सका कि दुनिया की महानतम कला का निर्माण आर्डर पर ही हो सका था। आर्डर मिलने के बाद ही स्मरणीय कलाकारों ने अपनी प्रतिभा का थैला खोल दिया था।"

"क्या मतलब?" रमा ने विस्मय से पूछा।

"कभी फिडियस को किसी ग्रीक सज्जन (हो सकता है वह स्वयं पेरिक्लिस रहे हों) ने कहा था, 'मिस्टर फिडियस, पार्थेनान की परि-कल्पना कीजिए।' जीवन के तीस साल तक फिडियस इस हुक्म पर चलते रहे और दुनिया के लोगों को पार्थेनान दिया।"

थोड़ी देर रुककर दीनबन्धु फिर बोले, "किसी ने जरूर फरमाइश की होगी—मिस्टर दा विंची, सुन्दर रंग और ब्रश लेकर बैठ गए होंगे। माइकेल एंजेलो, दोनातेलो, एंड्रेनिको, ए० ग्रेको सभी ने ऐसा ही किया था। एंजेलो को आड़-वाड़ कहते थे—किसी सन्त का सिर बनाने के लिए टुकड़ा, एक हाथ का टुकड़ा, दूसरे हाथ का टुकड़ा अलग बना रहे हैं/ —

रुपए माँगने में वह बिल्कुल नहीं झिझकते थे।"

सुतपा बोली, "इन विषयों पर तुम्हारी तरह और कौन खबर रखेगा, दीनू दा ? जब तुम बोल रहे हो तब मानना ही पड़ेगा कि कलाकार या मूर्तिकार ऐसे ही लोग होते हैं। लेकिन ऐसे कलाकार भी तो होंगे, जिन्होंने अपने हृदय की प्रेरणा से महान काम किया हो।"

दीनबन्धु सुतपा को देखते हुए बोले, "आर्डर में ही बिटोफज ने अपने एगमण्ड ओवरचर की सृष्टि की थी। हैंडेल को जब कहा गया कि आप 'लार्गो' बनाइए, तभी उन्होंने 'लार्गो' की सृष्टि की।"

दीनबन्धु पैनी नजर से सुतपा को देख रहे थे। रमा ने सुतपा बन कर अच्छा ही किया था, क्योंकि सुतपा को बुढ़ापा छू रहा था। इस सुतपा में दीनबन्धु रमा को नहीं ढूंढ़ पा रहे थे !

दीनबन्धु को दुख हो रहा था। प्रकृति में कोई हिसाब नहीं। नारी के सौन्दर्य-राज्य में हानि की कोई सीमा नहीं, नहीं तो उस दिन की उस रमा की यह दुर्दशा ?

रूप ! रूप से झुलसता चेहरा देकर ईश्वर ने रमा की सृष्टि की थी। रमा वीनस का दूसरा संस्करण थी। दुनिया के लोगों के रूप की प्यास को बुझाने के लिए झक्की विश्वकर्मा अपने स्टुडियो में कभी-कभी अपने हाथों से माडल बनाते हैं। मांस के बदले रमा के लिए उन्होंने शायद गाय के दूध के मक्खन का इस्तेमाल किया था। रमा के शरीर का चमड़ा इतना साफ, इतना स्वच्छ था मानो अन्दर तक दिखाई पड़ता था। वह इतनी शर्मीली थी जैसे दूसरों की दृष्टि के ताप से उसके सुन्दर शरीर का माधुर्य मानो पिघल जाएगा। कुंवारी रमा की हिरणी-से काले कजरारे नयन, लम्बे घने काले केश, लम्बी ऊँची ग्रीवा, स्तनशोभित वक्ष और कृश कटि—दीनबन्धु अपने मानस-चक्षुओं से देखे जा रहे थे। उस दिन दीनबन्धु ने रमा के होंठों में स्वर्गीय लालित्य की जिस सुषमा को झरते हुए देखा था। उसे वह आज भी भूल नहीं सके थे।

जिस दिन अप्रकाश बाबू सरपेन्टाइन लेन में दीनबन्धु के साथ वाले मकान में किराएदार की हैसियत से आए थे, वह बहुत पुरानी बात नहीं थी। दीनबन्धु के सिर पर उस समय तक शिल्प का भूत नहीं सवार हुआ

था। लेकिन जब किशोरी रमा पर उनकी नजर पड़ी, तब दीनबन्धु आँखें हटाना भूल गए थे।

रमा को रूप देकर भी ईश्वर ने उसकी सरलता नहीं छीनी थी। रूप के धन से धनी लड़कियाँ बड़ी जल्दी अपने स्वाभाविक सुर को खो बैठती हैं। सरपेन्टाइन लेन में पड़ोसी-परिवारों के बीच जो आन्तरिकता और आत्मीयता पनपी थी, उसी के फलस्वरूप दीनबन्धु और रमा में भी स्वाभाविक स्नेह का एक बन्धन पैदा हो गया था।

म्यूजियम से लौटकर एक दिन दीनबन्धु अपनी छत पर बैठे-बैठे मिट्टी की यक्षिणी बनाने की कोशिश में लगे थे। अचानक रमा छत पर चली आई।

बोली, "क्या कर रहे हो, दीनू दा?"

रमा की आवाज सुनकर दीनबन्धु चौंक उठे।

रमा फिर बोली, "वाह! बड़ी अच्छी गुड़िया बना लेते हो तुम।"

"अच्छा!" दीनबन्धु बोले थे।

"रथ-यात्रा के दिन अगर बाजार में जाकर बैठोगे तो आधे घण्टे में एक टोकरी गुड़िया बिक जाएँगी।" रमा बोली थी।

*उस समय दीनबन्धु यही स्वप्न देखते थे कि रथ-यात्रा के दिन बाजार* में वह रंग-बिरंगे गुड्डे-गुड़ियों को लेकर बेचने के लिए बैठे हैं। उनकी बनाई गुड़ियों के लिए बाजार में मारा-मारी हो गई है। इससे अधिक कल्पना करने की शक्ति दीनबन्धु या रमा, किसी में नहीं थी।

उसके बाद रमा और दीनबन्धु बड़े होने लगे। दीनबन्धु के घर वाल ने उन्हें समझा दिया कि संसार गुड़ियों के खेल की जगह नहीं। रुपए-आने-पैसे की दुनिया में नाचने वालों और फोटो बनाने वालों की कोई कीमत नहीं।

पर रमा ने कुछ समझना नहीं चाहा। एकमात्र रमा ने ही विश्वास नहीं किया कि दुनिया में कलाकार की कोई कद्र नहीं।

लेकिन नहीं। यह क्षण विख्यात शिल्पी दीनबन्धु घोष के लिए अतीत में गोता लगाने का अवसर नहीं था। सुनपा बोल रही थी, " [illegible], अपनी घर-गृहस्थी के बारे में तो तुमने कुछ बताया नहीं।"

"शादी की थी--माधवी से," दीनबन्धु मशीन की तरह बोल गए।

"माधवी ! लगता है उसे मैंने तुम्हारे इस स्टुडियो में ही देखा था। बस्ती से माडल बनने के लिए आती थी।"

"तुम्हें ठीक ही याद है। हालाँकि वह मुझसे बार-बार पूछती थी कि मैंने अचानक उससे शादी क्यों की ?"

"क्यों की ?"

"क्यों की, का कोई जवाब नहीं है। एक दिन उसकी थोड़ी-बहुत जानकारी ली। पता चला, गरीब की लड़की है। पेट के लिए माडल बनने आई है। और भी बहनें हैं।"

मैंने उससे पूछा, "मुझसे शादी करोगी। कलाकार हूँ, भाग्य में क्या लिखा है, मालूम नहीं, लेकिन एक पैतृक मकान है। अपने बिगड़े हुए लड़के को भूख से मरने से बचाने के लिए पिताजी अनिच्छा से ही मेरे लिए यह मकान छोड़ गए हैं।"

"उसके तो जरूर भाग्य ही खुल गए होंगे। सच में ईर्ष्या करने लायक भाग्य है माधवी का !" सुनन्दा बोली।

"माधवी ने मुझ से कई बार पूछा है कि मैंने क्यों उसी से विवाह किया। मुझसे कोई जवाब न पाकर माधवी ने यह भी सोचा है कि मैंने उसकी गरीबी पर तरस खाकर उससे शादी की है। पर असली जवाब तो तुम ही दे सकती हो, रमा !"

रमा का चेहरा उदास हो उठा। "इतने दिनों के बाद भी तुम मुझे कष्ट दे रहे हो, दीनू दा ?"

नहीं, आज दीनबन्धु रमा को हतप्रभ नहीं करेंगे। लेकिन पहले न जाने कितनी बार उन्होंने सोचा होगा कि अगर रमा से उनकी कभी भेंट होगी तो उससे कहेंगे कि समाप्तप्राय मिट्टी की मूर्ति के पास बैठो। तुम्हारी प्रतीक्षा में मैंने बहुत समय काटा है, रमा ! बस अगर एक दिन और आ जातीं तो मेरा काम पूरा हो जाता। बस एक ही दिन का काम बाकी था।

साधारण मध्य वर्ग के घर में कंजूस विधाता ने अपने हाथों से रमा को इतना रूप दिया था, यह सोचने के लिए भी दिल कबूल नहीं करता।

कई बार मन मे शक होता कि हो न हो स्कूल मास्टर अप्रकाश बाबू किसी राजकुमारी को ही चुरा लाए हैं।

पर अप्रकाश बाबू की लड़की ही तब क्या जानती थी कि रूप के बाजार में वह कभी ऊँचे दामो पर बिकेगी ? वह नही जानती थी, तभी तो उसने दीनबन्धु से प्यार किया था।

दीनबन्धु की शिल्प-साधना को जब सारे लोगों ने पागलपन की संज्ञा दी थी, उन दिनों दीनबन्धु को रमा ने ही उत्साह और सान्त्वना दी थी। रमा बोली थी, "दीनू दा, तुम शायद कोई जादू जानते हो। तुम्हारी अंगुलियों के बीच मे आकर मिट्टी कैसे गुड़िया बन जाती है !"

मिट्टी से गुडिया बनाने के इस खेल को रमा घण्टों चुपचाप बैठी देखती रहती थी। दीनबन्धु कभी कहते थे, "ऐ रमा, जाओ घर जाकर पढो। चाचाजी कहेंगे, मेरे साथ रहकर तुम भी बिगड़ रही हो।"

जो कभी शोक का विषय था, वही नदी के समान दीनबन्धु पर छा जाएगा, यह शायद दीनबन्धु ने खुद भी नही सोचा था। अप्रकाश बाबू तब तक मकान बदल कर किसी दूसरे मोहल्ले मे जा चुके थे।

बगल के मकान मे इस तरह तो कितने ही किरायेदार आते-जाते हैं। पर घर बदलने के साथ-साथ वह दोस्ती खत्म भी हो जाती है। दीनबन्धु का अप्रकाश बाबू और रमा के साथ भी ऐसा ही कुछ हो सकता था। कुछ हद तक ऐसा हुआ भी। पर एक दिन अचानक ही रमा से दीनबन्धु की भेंट हो गई।

दीनबन्धु म्यूजियम से लौट रहे थे। अचानक उन्हें सुनाई पड़ा, "अरे दीनू दा!"

मुँह घुमाकर दीनबन्धु ने रमा को सामने पाया। रमा कैशोर्य की अन्तिम सीढी पार कर यौवन की राजसभा मे पैर रख चुकी थी।

"अरे रमा तुम !" दीनबन्धु भी विस्मय से बोल पड़े थे।

"हम लोग कालेज की तरफ से म्यूजियम देखने आए थे।"

"तुम भी म्यूजियम आने लगी हो ?" दीनबन्धु ने पूछा।

"तुम्हारा क्या हाल है, दीनू दा ?" रमा ने पूछा।

दीनबन्धु बोले, "यही समझ लो, मुझ से कुछ होगा-होगा नहीं। पत्थर

काटने के लालच में पड़कर सबका कहना टाल कर रामपाल के स्टुडियो में दाखिल हुआ। थोड़ा-बहुत काम सीखा भी है, पर काम कहां है ?"

"घर का क्या हाल है ?"

"बिल्कुल अच्छा नहीं। माँ-बाप दोनों को खो कर अब बिल्कुल आजाद हूँ। किराए के कुछ रुपए मिल जाते हैं, उसी से गुजर कर लेता हूँ।"

रमा चुपचाप खड़ी रही। गृहस्थी के इस तरह के हाल-चाल से स्कूल-मास्टर की लड़की अपरिचित नहीं थी।

रमा बोली, "खैर तुम कलाकार बन सके, यह मेरा गर्व है, दीनू दा !" अपनी चुटिया को सामने लाकर रमा ने कहा।

"मैंने अपना एक स्टुडियो भी बनाया है, रमा ! काम कुछ मिले या न मिले, आयोजन में कमी नहीं है।"

"तुम्हारा अपना स्टुडियो ? वाह ! बड़े मजे की बात है ! एक दिन हमें वहां ले चलोगे, दीनू दा ?" रमा ने पूछा।

"अगर तुम आ सको तो मैं वाकई बड़ा खुश हूँगा", दीनबन्धु ने अपने मन की बात कह डाली।

"वाह ! आऊँगी क्यों नहीं ? तुम्हारे स्टुडियो में तो तुम्हारे न बुलाने पर भी जबर्दस्ती आऊँगी।"

नए सिरे से यह जो नई भेंट हुई, यहीं से एक नया अध्याय भी शुरू हुआ। रमा दीनबन्धु के स्टुडियो में आई थी। सारा कुछ बड़े ध्यान से देखा।

फिर सिर्फ एक बार नहीं, रमा अकसर दीनबन्धु से पास आने लगी।

"कला पैसे वालों को ही शोभती है। है न, दीनू दा ? पर मेरे दिमाग में यह भूत कैसे सवार हुआ कहो तो ?" रमा ने एक बार पूछा था।

"दुनिया की हर अच्छी चीज पर पैसे वालों का ही अधिकार है, ऐसी एक धारणा हम लोगों के दिमाग में बैठाई गई है," दीनबन्धु बड़े दुख के साथ बोले थे।

थोड़ा रुककर दीनबन्धु फिर बोले, "तकलीफ उठाकर तुम जो यहां आती हो, इसके लिए मैं तुम्हारा बड़ा आभारी हूं, रमा !"

"तुम बड़े बनावटी किस्म के आदमी बन गए हो, दीनू दा! बड़े लोगों के बीच उठना-बैठना पड़ेगा, इसीलिए इसका अभी से अभ्यास कर रहे हो क्या? तकलीफ की क्या बात है? कालेज से घर लौटने के रास्ते में ही तो तुम्हारा स्टुडियो है।"

ईश्वर ने रमा को सिर्फ सुन्दरता ही नही दी थी। उसके परिष्कृत चेहरे से आँखों को तृप्त करने वाली प्रकाश की किरणें निकल रही थी। दीनबन्धु ने सर झुकाकर रमा की फटकार सुन ली।

धीरे-धीरे दीनबन्धु ने अपने कलाकार-जीवन की सारी बातें रमा को बता दी। म्यूजियम मे रखी यक्षिणी की कहानी भी रमा को सुनाई।

रमा ने पूछा था, "कौन थी यह यक्षिणी? मुझ से उसका परिचय करा दोगे?"

दीनबन्धु रमा को वहाँ ले गए थे। हैरत भरी नजरों से रमा ने बड़ी देर तक यक्षिणी को देखा था। फिर सड़क पर आकर रमा बोली थी, "उस मूर्तिकार ने भी तो किसी-न-किसी को देखकर ही यक्षिणी की मूर्ति बनाई होगी।"

"यह तो है ही। शरीर और मन का आश्चर्यजनक रूप से संगम हुआ है इसमें," दीनबन्धु का उत्तर था।

रमा थोड़ी देर चुप रहने के बाद बोली, "उस माडल की बात सोच-सोचकर बड़ी ईर्ष्या होती है, जिसे देखकर मूर्तिकार ने इस यक्षिणी को गढ़ा होगा।"

दीनबन्धु बोले, "बहुतों की धारणा है कि पुराने जमाने में नारी और भी सुन्दर थी। जो नारियाँ फिडियस के स्टुडियो में माडल बनने आती थी, वैसी इस युग मे मिलनी दुर्लभ हैं।"

"तुम्हारी क्या राय है?" रमा ने जानना चाहा।

"मैं ऐसा नही मानता। ग्रीस या अमरावती की रमणियाँ सुन्दर अवश्य थी, पर उनके सौन्दर्य मे आधा हिस्सा शिल्पी की कल्पना का था। वे आधी मानवी थी, आधी नितान्त काल्पनिक।"

क्या दीनबन्धु भी आधी कल्पना से रमा को परिपूर्ण समझ बैठे थे? नही। अवश्य ही दीनबन्धु के साथ यह बात नही थी। रमा उनकी प्रेरणा

की स्रोत थी। रमा ने ही कहा था, "लोग कुछ भी कहें, दीनू दा, तुम्हें बिना किसी भी तरफ देखे आगे बढ़ना होगा। बहुत बड़ा बनना होगा। तुम यदि आँखें उठाकर देखोगे तो असुन्दर भी सुन्दर हो जाएगा।"

पर दीनबन्धु ये अपनी कल्पना के पंख ज्यादा ही फैला लिए थे। वह स्वप्न देखते थे कि रमा उनकी जीवन-साथी बन गई है। महान से महानतम सृष्टि की तरफ रमा ही उन्हें हाथ पकड़ कर ले जा रही है।

अपने मन में तुम ने कौन-सा स्वप्न संजो कर रखा है, दीनू दा?" रमा ने एक दिन पूछ ही लिया।

"मेरा एकमात्र स्वप्न है, पत्थर में प्राण-प्रतिष्ठा करूँ। मैं प्रमाणित करना चाहता हूँ कि ग्रीक कलाकारों की तरह शरीर का जयगान करने पर हम पत्थरों में भी प्राण फूंक सकते हैं।"

"तो फिर करते क्यों नहीं?" रमा ने पूछा था।

संकोची दीनबन्धु ने उत्तर दिया, "हमारे यहां माडल कहां है? रुपयों के लिए जो माडल बनने आती हैं, उनके पास शरीर का ऐश्वर्य कहां?"

इसके जवाब में रमा ऐसा प्रस्ताव रखेगी, दीनबन्धु ने कभी सोचा भी नहीं था।

रमा बोली थी, "दीनू दा, मुझे डर नहीं लगता, ऐसा तो मैं नहीं कह सकती, लेकिन यदि मैं तुम्हारे किसी काम आ सकूं तो मैं तुम्हारी माडल बनने से 'ना' नहीं करूँगी।"

"क्या कह रही हो, रमा? तुम जानती हो इसमें कई तरह की विपत्तियां हैं। यदि तुम्हारे घर के लोग जान गए तो?"

"अगर जान ही गए तो क्या होगा? तुम तो हो न!"

दीनबन्धु ने सोचा था, रमा का चेहरा छोड़कर पहले उसका एक धड़ गढ़ेंगे। उसके बाद अलग से रमा का चेहरा बनाएँगे। वह रमा को किसी मुश्किल में नहीं डालना चाहते थे। महान कलाकारों में कई, हाथ या मस्तकविहीन मूर्ति (जिन्हें वे टोरसो कहते हैं) बनाकर अक्षय सम्मान के अधिकारी बन गए थे। दीनबन्धु का 'टोरसो' भी किसी शिल्प-प्रदर्शनी में हलचल मचा देगा। उसके बाद जिस दिन ख्याति-प्राप्त मूर्तिकार दीनबन्धु

दूल्हे के वेष में रमा को जीवन साथी बनाकर ले आएँगे, उसी दिन रात को 'टोरसो' के ऊपर सिर को जोड़कर उसे सम्पूर्ण कर देंगे।

रमा आई थी। सब की नजरें बचाकर अपने दीनू दा के स्टूडियो में। शिलाशिल्पी की आँखों के सामने शरीर का ताला तोड़कर उसने अपने यौवन के ऐश्वर्य को पसार दिया था।

'मेरे लिए इतनी जोखिम तुम न उठाती तो ठीक करती, रमा!" रमा के निर्वस्त्र शरीर की नकल करते हुए दीनबन्धु बोले थे। उन्होंने यह बात हृदय से ही कही थी।

"पहले अपना काम पूरा कर लो। इन बातों का जवाब मैं बाद में दे दूँगी।" माडल के सिंहासन पर बैठकर रमा बोली थी।

रमा के कोमल नग्न शरीर और नरम मिट्टी के ढेर के बीच शिल्पी दीनबन्धु मानो खो-से गए। रमा ने अपने प्रफुल्ल व्यक्तित्व को लज्जा और संकोच के ऊपर सहज ही उठा लिया था, जैसे सुबह-सुबह सूर्यमुखी जितने स्वाभाविक भाव से अपने अनावृत्त शरीर से सूर्य को प्रणाम करती है। रमा ने पूछा था, "शरीर के बिना कला की साधना तुम लोगों की पूरी नहीं होती?"

दीनबन्धु बोले थे, "आदमी के मन की तरह शरीर भी युग-युगान्तर से विश्व के केन्द्र पर खड़ा है। तरह-तरह के विश्लेषणों के बावजूद शरीर की अनदेखी नहीं की जा सकती।"

रमा बोली, "यह तो मनुष्य की अक्षमता का ही प्रमाण हुआ।"

दीनबन्धु मूर्ति बनाते हुए बोले, "जानती हो रमा, प्राचीन युग के कलाकारों ने समाधि-खण्डहरों में शरीर को विकृत और कुत्सित रूप से आंका है। उनकी धारणा थी, शरीर को कुत्सित दिखाकर ही आत्मा की प्रधानता तथा उसके सौन्दर्य को लोगों तक पहुँचाया जा सकता है। इसी के प्रतिवाद के रूप में पुनर्जागरण के कलाकारों ने बाहरी शरीर पर गौर किया। शरीर की सुन्दरता और सुषमा को यूरोप के लोगों ने पूजना शुरू किया। अब फिर समन्वय की साधना शुरू हुई है। हम कहना चाहते हैं कि हम भावनाओं के लिए शरीर खत्म होने से बचा लेंगे और शरीर की खातिर भावनाओं की कद्र करना भी नहीं भूलेंगे।"



रमा कई दिनों तक लगातार स्टूडियो में आती रही थी। उसका चौंधिया देने वाला रूप दीनबन्धु को किसी और ही स्वप्न की दुनिया में ले गया था। अनुप्रमाणित हो कर शिल्पी दीनबन्धु किसी विराट सृष्टि की साधना के समुद्र की अतल गहराई में डुबकी लगा बैठे थे।

दीनबन्धु सुबह से ही काम शुरू कर देते थे। कब खाने का समय बीत चुका होता, उन्हें इसका ख्याल ही नहीं रहता। दीनबन्धु एक मधुर स्वप्न में विभोर थे। शरीर के किसी प्रयोजन की तरफ उनका ध्यान नहीं बंटा। और शिल्पी की यह साधना और उसका स्वप्न और भी मोहक बना रहे, इस साधना में रमा जुटी रही। उसे भूख-प्यास का एहसास तक नहीं होता।

एक दिन जब ख्याल आया तब दीनबन्धु ने कुछ खाना मंगवाया। ढीले-ढाले से एक गाउन के बीच अपने शरीर को छुपा कर रमा ने चाय की प्याली में चाय रखी। दीनबन्धु बोले, "तुम्हें आज भी कालेज में अनुपस्थित रहना पड़ा?"

"उससे बड़ा काम यहां हो रहा है," रमा ने कहा था। वह समाप्त-प्राय टोरसो को एकटक देख रही थी।

"क्या देख रही हो रमा?" दीनबन्धु ने पूछा। "आइने में अपने को तो रोज ही देखती होगी।"

"तुम्हारी आंखों से अपने को देखने की इच्छा पूरी कर रही हूं, दीनू दा!"

रमा के जाने के बाद दीनबन्धु ने गीले कपड़े से टोरसो को लपेट कर रखा था।

दो दिनों के बाद रमा के फिर आने की बात थी। उस दिन दीनबन्धु कपड़े पर पानी छीट कर रमा की प्रतीक्षा मे बैठे रहे, पर रमा नहीं आई। दीनबन्धु ने सोचा, वह अचानक किसी काम से अटक गई होगी। वह दूसरे दिन फिर प्रतीक्षा मे बैठे रहे, पर रमा नही आई।

रमा अब और नही आने वाली थी। रमा के रूप पर मोहित होकर कहां के किस धनी लड़के ने उसे अपने लड़के की बहू बनाने की इच्छा प्रकट की थी।

अप्रकाश बाबू को इसमे आपत्ति न होना ही स्वाभाविक था। पर दीनबन्धु को खबर मिली कि इस विवाह मे रमा को भी कोई आपत्ति नही थी। इतने दिनो मे उन्होने रमा से जो उम्मीदें बांधी थीं, सब झूठी हो उठीं। जिसने आशा दी थी, निराश करने का हक भी उसे अवश्य ही था। दीनबन्धु इससे विचलित नही हुए।

उनकी आत्मिक पीड़ा का कारण मूर्ति का अधूरा रह जाना था। दीनबन्धु ने मन ही मन केवल इतना ही कहा था, "जब तुमने इतनी ही बैठकें दी थी रमा, तब एक दिन और आ जाती तो क्या बिगड़ जाता ? रमा, तुम खुद भी तो आ कर कह सकती थी कि तुम बड़े घर की बहू बनने जा रही हो। दुनिया की हर सुन्दर चीज पैसे वालों के लिए ही तो बनी है। संसार का यही नियम है।"

पर दीनबन्धु के मन मे कहीं एक क्षीण-सी आशा थी कि रमा आएगी। रमा की प्रतीक्षा मे दीनबन्धु मिट्टी के 'टोरसो' को भिगोए हुए कपड़े मे लपेटकर उसकी आने की राह देखते रहे।

पर रमा नहीं ही आई। उसके बदले एक दिन अप्रकाश बाबू आए। उन्होंने कहा, "बेटे दीनबन्धु, तुमने सुना होगा कि रमा की शादी हो गई है। तुम पांच जनों के आशीर्वाद से रमा को कल्पनातीत सौभाग्य मिला है।"

फिर थोड़ा रुक कर अप्रकाश बाबू बोले, "पर मै यह क्या सुन रहा हूं, बेटे ! तुमने रमा की कोई मूर्ति बनाई है ?" दीनबन्धु का हाथ पकड़ कर अप्रकाश बाबू बोले, "तुम तो सब समझते हो बेटे, अगर कभी कहीं

किसी की नजर पड़ जाए...।"

"नजर में नहीं आएगी," दीनवन्धु ने वचन दिया था। फिर भी जाने के पहले अग्रकाश बाबू बोले थे, "जीवन में तुम्हें कितनी ही मॉडल मिलेंगी बेटे, मेरी लड़की का घर वर्बाद मत करना!"

आज इतने दिनों के बाद अग्रकाश बाबू का चेहरा भी दीनवन्धु की आँखों के सामने स्पष्ट हो उठा। पर दीनवन्धु मन ही मन विगत सुन्दरी सुतपा के चेहरे का 'डिटेल' पकड़ने की कोशिश करने लगे।

रमा बोली, "दीनू दा, उन लोगों ने ही मेरा नाम बदल कर सुतपा रखा।"

"वाह! बड़ा मीठा नाम है।"

"जानते हो दीनू दा, ससुराल में बहुत पैसा है। मेरे ससुर ने रिचर्डसन साहब के साथ मिलकर व्यापार शुरू किया था। पहले तो छोटा-सा एक कारखाना था, पर बाद में बढ़ते-बढ़ते मेरी आँखों के आगे ही वह विशाल कारखाने में बदल गया। अब तो हजारों लोग इस प्रतिष्ठान में काम करते हैं।"

"तुम्हारे ससुर को इस देश में सभी जानते हैं, सुतपा! उनके नाम पर अभिजात कालोनी में सड़क का नाम रखा गया है। अंग्रेज लोगों ने उन्हें खिताब दिया है। काशी के संस्कृत के पण्डितों ने उन्हें मानपत्र दिया है। सुना है, प्राथमिक विद्यालय में उनकी जीवनी पाठ्यपुस्तक में रखी गई है," इतना कहकर दीनवन्धु चुप हो गए।

सुतपा बोली, "मेरी सास से जब उन्होंने शादी की थी तब वह एक मामूली कर्मचारी थे। मेरी सास देखने में भी अच्छी नहीं थी।"

"तभी तो लड़के के लिए उन्होंने व्याज के साथ सुन्दरता भी ली है।"

"ससुरजी मुझे अपने प्राणों से भी अधिक मानते थे।"

'ससुर के पुत्र भी सुन्दरी सुतपा को उतना ही मानते होंगे,' कहना चाह कर भी दीनवन्धु को यह कहना अच्छा नहीं लगा। अगर सुतपा सुखी हुई है, अपार ऐश्वर्य और सुख ने अगर उसके शारीरिक सौन्दर्य को और सार्थक किया है, तो खुशी की ही बात है।

"तुम्हारे भाई लोग क्या कर रहे?" दीनवन्धु ने जानना चाहा।

"मुन्ने को तो तुम जानते ही थे। इस समय हमारे 'ए' वर्क्स का मैनेजर है। और बोबी का तो कुछ हुआ गया नहीं। तीन-तीन बार आई. एम. सी. में फेल हो गया। अन्त में उसे विलायत भेज दिया गया। अब हमारे लन्दन के आफिस का चार्ज सम्भाल रहा है। कुछ भी हो, है तो अपना ही भाई न! फेल हो गया है, इसलिए सड़क पर तो निकाल नहीं सकती न!"

रमा ने अच्छा ही किया था। सिर्फ अपने भाइयों को ही नहीं, चचेरे फुफेरे, ममेरे सभी भाइयों को बड़े-बड़े ओहदों पर बैठा दिया था। बहनों की कारखाने के छोटे अफसरों के साथ शादी कर दी थी। रमा का सौन्दर्य विभिन्न तरह से दुनिया के बहुत-से लोगों के काम में आया था।

लेकिन जिस रूप ने रमा से इतना सब कुछ करवाया, वही रूप रमा को छोड़ कर अब कहां भाग गया था। अब सिर्फ रमा ही रह गई थी। दीनबन्धु को हंसी आ रही थी।

"सुतपा नगर में तुम एक बार जरूर आना, दीनू दा! मैं अपनी रोल्स गाड़ी भिजवा दूंगी। देखना कि हमने अपने साधारण श्रमिकों को भी रहने के लिए कैसे क्वार्टर दिए हैं," सुतपा बोलती रही।

दीनबन्धु बोले, "इसीलिए तो वे लोग चन्दा इकट्ठा कर तुम्हारी मूर्ति बनवा रहे हैं।"

"अफसर लोग तो चाह रहे थे कि मूर्ति का सारा खर्च वे ही उठाएं, पर मैंने कह दिया है कि साधारण कर्मचारी से भी चन्दा लेना पड़ेगा।"

"तुमने अच्छा ही किया, रमा! मैं भी तो पैसे वालों के पैसों पर ही जी रहा हूं। साधारण लोगों में आज भी कला या मूर्ति-रचना के प्रति रु-चि नहीं जगा सके, इसीलिए हमारी पराधीनता भी नहीं गई," दीनबन्धु काम करते-करते बोल रहे थे।

रमा थोड़ी बेचैन-सी होने लगी। बोली, "तुम मुझे [illegible] क्यों देख रहे हो?"

मूर्ति पर से मिट्टी की थोड़ी परत [illegible] दीनबन्धु [illegible] "गुरुजी ने हमें इसी तरह से काम करना [illegible]। [illegible] सी मिट्टी लगाते रहना और [illegible]"

"यदि तुम्हारी सब्जेक्ट बांकी युवती होती तो तुम्हारी टेढ़ी नजर पर पागल हो उठती !"

दीनवन्धु की इच्छा हुई कि वह सुतपा को याद दिला दें कि जवान उम्र में वह भी उनकी सब्जेक्ट बनी थी। पर वह चुप ही रहे।

सुतपा ने दो-तीन बार रूमाल से अपने ओठों को पोंछा। फिर वैनिटी बैग से छोटा-सा आइना निकाल कर अपने बाल ठीक किए। सेण्ट के सुगन्ध लगे टुकड़े से सिर का पसीना पोंछती हुई शिकायत भरी आवाज में बोली, "दीनू दा, तुम्हें अपना स्टूडियो एयर-कण्डिशण्ड बनवाना चाहिए था। थोड़ी देर सिटिंग देने के बाद शरीर भारी-भारी-सा लगने लगता है।"

दीनवन्धु ने सोचा, वह सुतपा को याद दिला दें कि अघ्रकाश बाबू के किराये के मकान में हवा या रोशनी कुछ भी नहीं घुसती थी। पंखे की बात तो दूर रही, घर में बिजली की बत्ती तक नहीं थी।

पर उन पुरानी बातों को याद करने की फुर्सत सुतपा को कहां थी। उसने खुद ही कहा, "एक सलाह दूं ? अगर दिक्कत न हो तो मेरे घर पर क्यों नहीं आ जाते। हर कमरे में एयर-कण्डिशनर लगा है। मन लगा कर काम कर सकते हो। वहां तुम्हें कोई डिस्टर्ब नहीं करेगा।"

"मैं सच समझता हूं, रमा ! लेकिन स्टूडियो के इस वातावरण के अलावा मुझे और कहीं काम की प्रेरणा नहीं मिलती। एक बार सिर्फ लालच में आकर शरतचन्द्र को देखने के लिए देवानन्दपुर गया था। उस समय वह उपन्यास लिखने में व्यस्त थे। मुझे आंखों के आगे बैठा देख कर वह डिस्टर्ब हो सकते हैं, यह सोच कर मैं उनके कमरे के बाहर बरामदे में अपना सामान-वामान लेकर बैठा था। एक-एक बार उठ कर दरवाजे से झांक कर उन्हें देखता और चेहरे का एक अंश मन में बैठा कर झटपट मूर्ति पर मिट्टी चढ़ाता। उसके बाद फिर जा कर देखता।"

"तुम्हें दिक्कत नहीं होती थी ?" रमा ने पूछा।

"दिक्कत से क्या मैं इस मौके को छोड़ देता ?"

"वह बहुत-से रुपये दे रहे होंगे ?" रमा ने जिज्ञासा की।

दुनिया की हर चीज को रुपयों में तौलने की अभ्यस्त हो चुकी थी

सुतपा । रुपयों के हुक्म से ही रमा को सुतपा बना देने में वह झिझकी नहीं थी।

दीनवन्धु बोले, "शरतचन्द्र की मूर्ति बनाने के लिए मुझे एक पैसा भी नहीं मिला था। वह नहीं चाहते थे कि मैं उनकी मूर्ति बनाऊं—पत्थर की मूर्ति के बिना भी वह अमर रहेंगे, यह जानते थे। पर मैं सोचता था, जो आदमी मानव-चरित्र के मन की बात कागज पर उतार सकता है, मैं उसका शतांश भी अगर अपनी छेनी से पत्थर पर उतार पाऊं!"

ठीक इसी तरह से रोंदा ने विक्टर ह्यूगो की मूर्ति बनाई थी। एस्टाइन कन्धे पर सामान लादकर लेखक कानराड के घर इसी तरह से जाकर हाजिर हुए थे। पर ये बातें धनी घर की पुत्रवधू सुतपा सेन को कहने से क्या फायदा?

सुतपा बोली, "कितने दिनों के बाद तुम्हारे यहां आई हूं, दीनू दा। बड़ा अच्छा लग रहा है।"

दीनवन्धु मन ही मन हंस पड़े। अगर रमा यह पूछे, 'तुम्हें कैसा लग रहा है,' तो दीनवन्धु मुश्किल में पड़ जाएंगे। कभी ऐसा दिन था जब सुतपा को देखने पर वह अनुप्रमाणित हो हो उठते थे। पर ये बातें तो बड़ी पुरानी थीं।

रमा की असमाप्त मूर्ति को सामने रख कर वह कितने ही दिन प्रतीक्षा करते रहे थे।

वह सोचते, कम से कम एक बार छुप कर रमा उनसे मिलने जरूर आएगी।

मन की किसी ऐसी ही हालत में माधवी उनके स्टूडियो में आई थी। गरीब घर की लड़की स्टूडियो में माडल का काम कर दो पैसे कमाने के लिए आई थी। दीनवन्धु के मानसिक तनाव पर उसकी नजर पड़ी थी, पर वह मुंह से कुछ बोली नहीं थी।

असमाप्त मिट्टी की मूर्ति को देखकर माधवी ने पूछा था, "इस मूर्ति को अधूरी छोड़कर दूसरी बनाएंगे?"

दीनवन्धु प्रश्न को टाल गए। बोले थे, "कोई बात नहीं।"

नहीं। यह समय स्मृति के समुद्र में डुबकी लगाने का नहीं था। दीन-

न्धु ने अपने को सम्हाल लिया।

सुतपा बोली, "दीनू दा, तुमने शादी कब की ? मेरे साथ आखिरी मेंट के तुरन्त बाद ही ?"

किसी तरह 'हूं' कह कर दीनबन्धु गम्भीर हो गए। उनका हाथ रुक गया। रमा से बोले, "आज और काम करने की इच्छा नहीं हो रही है।"

"अच्छा मैं कल आ जाऊंगी," कह कर सुतपा चली गई।

सुतपा ने सोचा था कि दीनबन्धु उसे गाड़ी तक छोड़ने आएंगे, पर उन्होंने ऐसा किया नहीं। चुपचाप अपनी कुर्सी पर बैठे रहे। स्टूडियो की बत्ती बुझा कर दीनबन्धु चुपचाप अकेले अंधेरे में बैठे रहे।

थोड़ी देर पहले उन्हें रोने की इच्छा हो रही थी। अगर सचमुच ही जी खोल कर थोड़ा रो पाते तो मन शायद हल्का हो जाता और उस हल्के मन से वह फिर रूप की साधना में जुट जाते। पर उनके पत्थर की छाती से आंसू नहीं निकले।

इतने वर्षों के बाद लगता था माधवी शायद पागल हो जाएगी। पागलपन के लक्षण उसमें स्पष्ट दिखाई दे रहे थे। लोगों के बेटे क्या मरते नहीं ? यदि सरकारी आंकड़े देखे जाएं तो हर रोज हजारों बच्चे मां की गोद से बिछुड़ जाते हैं। दीनबन्धु तो बचपन से ही सुनते आए थे कि इस देश के बच्चों की मरने की संख्या सबसे अधिक है। कब की एक वेदना को मन में इस तरह जिला कर रखने से कोई अपने को इस तरह से जख्मी बनाता है ?

उस बीच जब दीनबन्धु माधवी के सामने आए तब ओठों से दांत भी कर माधवी बोली, "तुम पास मत आना। तुम्हें चेतावनी दे रही हूँ, पास मत आओ।"

"क्या कह रही हो, माधवी ? तुम ऐसी तो नहीं थीं !" दीन कातर भाव से बोले।

"उस समय मैं क्या जानती थी कि तुम एक खूनी हो। अगर ज तो क्या मैं तुमसे शादी करती ?"

"माधवी !" दीनबन्धु आर्तनाद कर उठे।

"ठीक कह रही हूँ। हजार बार कहूँगी। दुनी में भी बदतर आदमी हो तुम। नहीं तो मेरे बच्चे को तुम चैन आते ?" उसके बाद माधवी ने कमरे में जाकर धड़ाम से दरवाजा बन्द कर लिया।

दीनबन्धु की बड़ी मिन्नतों के बावजूद माधवी ने दरवाजा नहीं खोला था। हारे-थके, निराश दीनबन्धु अपने स्टूडियो में लौट आए थे। तीन असमाप्त मूर्तियाँ एक साथ पड़ी थी। बोग एण्ड टोमरा इण्डस्ट्रीज के बोस साहब, लेडी गुप्ता और उनका बबुआ।

लगता था दीनबन्धु किसी शल्य-चिकित्सक की तरह लगातार तीन रोगियों को बेहोश कर एक ही साथ उनका आपरेशन करेंगे। उनकी अवहेलना और देरी के कारण ही काम खत्म होने के पहले ही तीनों बार-बार होश में आ रहे थे। तीनों कराह रहे थे। इनमें बबुआ की आवाज उनके कानों में आ कर बिंध रही थी।

यह आवाज दीनबन्धु को ठीक-ठीक याद थी। अगर स्मृति से आवाज रिकार्ड की जा सकती तो उस रिकार्ड को सुन कर माधवी हैरान रह जाती।

उन दिनों स्टूडियो में बबुआ डगमगाते कदमों से इधर-उधर घूमा करता था। माधवी कहती, "सावधान हो जाओ। तुम्हारी सारी चीजें तोड़-ताड़ कर रख देगा।"

पर छतना-सा बबुआ अपने पिता की कला की कीमत मानो समझता था। वह कोई तोड़-फोड़ नहीं करता था, बल्कि अवाक आँखों से सब कुछ देखा करता। जब वह थोड़ा और बड़ा हुआ तब स्टूडियो को ही अपने खेलने-कूदने का कमरा समझ बैठा। उनके पिता ही उनके खेल के साथी थे।

"नहीं, बबुआ, तुम मिट्टी से मत खेलो। हाथ-पैर गन्दे हो जाने पर तुम्हारी माँ नाराज होंगी।"

पर बबुआ जल्दी स्टूडियो नहीं छोड़ता था। कहता, "तुम भी तो दिन-रात मिट्टी से खेलते हो ? माँ तुम्हें तो नहीं डाँटती है।"

दीनबन्धु बेटे को दुलारते हुए बोलते, "मिट्टी से खेलना ही तुम्हारे पिता का काम है। मैं जितनी मिट्टी हाथ में लगाऊँगा, तुम्हारी माँ उतनी

ही खुश होगी।" बबुआ चेहरे का ऐसा भाव बनाता, मानो वह सब कुछ समझ गया है।

कभी दीनबन्धु पूछते, "बड़े हो कर तुम क्या बनोगे, बबुआ ?"

"हाथ से मिट्टी सानूंगा," बबुआ झटपट बोलता।

कौन जानता था कि किसी महान कलाकार की सुप्त प्रतिभा उनकी सन्तान में छुपी हो। रूपलोक के जिस स्वर्ग में प्रवेश का स्वप्न तक दीनबन्धु नहीं देखते, बबुआ शायद वहीं महल खड़ा करने की क्षमता रखता हो।

छोटा-सा बबुआ मिट्टी के ढेर पर नाचता रहता और फिर थोड़ी-सी मिट्टी लेकर स्टुडियो के किसी कोने में बैठ जाया करता। माधवी डर जाती, कहती, "इस पर कड़ी निगरानी रखना। लालची लड़का है, मिट्टी ही खा जाएगा।"

बबुआ मिट्टी खाता नहीं था, पर सूंघता जरूर था। भीगी मिट्टी की सोंधी-सोंधी महक से बबुआ परिचित हो चुका था। मिट्टी की महक एक-जैसी नहीं होती। मिट्टी को सूंघने के बाद बबुआ उसकी पेड़ी बनाता और उसके थोड़ी देर बाद चिल्लाता, "पिताजी, बिल्ली।"

घर की बिल्ली को नन्हा कलाकार रूप देने की कोशिश करता। दीनबन्धु कहते, "वाह ! बहुत खूब ! बड़ी अच्छी बनी है।" फिर खुद ही बिल्ली बना देते। बबुआ खुशी से तालियां बजाता।

बबुआ ने सारे औजारों को भी पहचान लिया था। पिता के काम के समय वह चुपचाप बैठा रहता। आँखें फाड़कर अंगुलियों का काम देखता। उसे खाना-पीना भी याद नहीं रहता।

माधवी नाराज होती। गम्भीर होकर कहती, "तुम्हारा शागिर्द बड़ा अच्छा है।"

दीनबन्धु कहते, "ऐसा भक्त शिष्य मिलने पर कोई भी गुरू अपने को धन्य मानेगा।"

माधवी कहती, "तुम दूसरा शागिर्द ढूंढो। मैं अपने लड़के को बिगाड़ने नहीं दूंगी !"

दीनबन्धु हंस पड़ते। बबुआ को देख कर सोचते, "इस नन्हे शागिर्द

को स्मरणीय बनाने के लिए कुछ करना जरूरी है।"

एक दिन दीनबन्धु ने बबुआ को एक स्टूल पर बैठा दिया था। वह अच्छे बच्चे की तरह बैठा रहा। अचानक माधवी स्टुडियो में पहुँच कर हैरान रह गई। पूछा, "क्या मामला है? बबुआ क्या कर रहा है?"

"तुम्हारा लड़का मेरे लिए सिटिंग दे रहा है। इस समय रिश्ता पिता-पुत्र का नहीं, कलाकार और उसके सबजेक्ट का है। ऐसा समझदार विषय मिलना कठिन है।"

"गर्दन में दर्द हो रहा है, पिताजी, थोड़ी घुमा लूँ?" बबुआ ने पूछा।

माधवी बोली, "शैतान कहीं का। जब मोहन हज्जाम बाल काटने के लिए आता है तब तो मिनट भर चुप-चाप नहीं बैठता। रो-रो कर मुहल्ला इकट्ठा कर लेता है और स्टुडियो में आकर धूप सेंकते हुए मगरमच्छ की तरह शान्त है।"

"सिटिंग के समय कलाकार या उसके विषय को तंग नहीं करना चाहिए। उससे काम खराब हो जाता है," दीनबन्धु उस दिन इसी मजाक पर माधवी को स्टुडियो से निकाल कर मूर्ति बनाने का काम करते रहे थे।

दीनबन्धु आज भी डिस्टर्ब हो रहे थे, पर आज वह माधवी को कैसे हटाएँ! माधवी उनके मन पर छाई हुई थी।

उस बार की मूर्ति वाकई बड़ी सुन्दर बनी थी। मिट्टी का माडल देख कर माधवी उछल पड़ी थी। बोली थी, "तुमने अब तक जितना भी काम किया है, यह उनमें सबसे बढ़िया है!"

दीनबन्धु बोले थे, "तुम्हारी सबसे प्रिय वस्तु की मूर्ति जो है! इसी-लिए तो नहीं कह रही हो?"

"खूब कहा तुमने! क्यों कला के बारे में मेरी राय की कोई कीमत नहीं है क्या?" माधवी झूठा गुस्सा दिखा रही थी।

"नहीं-नहीं। मैं गलती के लिए माफी मांगता हूँ," दीनबन्धु ने कहा था।

खुशी से उछल कर माधवी बोली, "मुझे क्या लगता है, जानते हो? यह मूर्ति हाथ से नहीं बनाई गई है। लगता है जैसे मुन्ने के चेहरे की छाप

ही उतार लीगई है।"

"चुप हो जाओ, वरना मुकदमा ठोंक दूंगा!" दीनबन्धु ने मजाक किया।

"क्या मतलब ?"

"मतलब यही कि कभी रोंदा के लिए भी लोगों ने यही शिकायत की थी कि उसकी मूर्तियां इतनी सजीव इसलिए होती हैं, क्योंकि उसने जीवित लोगों के चेहरों की छाप ली थी। अन्त में रोंदा को अदालत की शरण लेनी पड़ी। वह मुकदमा जीत गया।"

"अच्छा बाबा, तुम्हारे मान में हानि पहुंची हो तो माफी मांगती हूं। लेकिन क्या यह सच नहीं है कि आदमी का सांचा बना कर मूर्तिकार लोग मूर्तियां नहीं बनाते ?"

"हां, कई बार उन्हें ऐसा करना पड़ता है। फ्रेंच मूर्तिकार दालू उपन्यासकार विक्टर ह्यूगो की मूर्ति बना रहे थे। काम समाप्त होने के पहले ह्यूगो का देहान्त हो गया तब मजबूरन उनके मृत शरीर से सांचा तैयार किया गया और फिर उसी सांचे से दालू ने उनकी मूर्ति बनाई थी।"

माधवी बोली थी, "तुम इतनी खबर इकट्ठी भी कर सकते हो, बाबा! अब तो हंसो, तुम्हारा काम भी तो पूरा हो गया।"

"कहां खत्म हुआ ? अभी तो मिट्टी का ही माडल बना पाया हूं। मिट्टी के माडल से अब नेगेटिव लूंगा।"

बबुआ को भी अपनी मूर्ति से बड़ा प्यार हो गया था। वह हर वक्त अपनी मूर्ति के पास बैठा रहता। एक दिन बबुआ ने पूछ ही लिया, "नेगेटिव क्या होता है, पिताजी ?"

"पहले बना लूं फिर देखना," कह कर दीनबन्धु प्लास्टर के डिब्बे से पाउडर निकालने लगे। फिर डिब्बे को एक तरफ रख कर मूर्ति के बीचों-बीच यानी हाथ, कन्धे और सिर के बीच से मिट्टी का पार्टिशन-सा बनाया और उसके बाद मूर्ति के पीछे का हिस्सा अपनी तरफ घुमा लिया।

"मेरा चेहरा नहीं दीख रहा है," बबुआ ने शिकायत की।

"देखोगे बेटा! पहले काम तो पूरा कर लूं," दीनबन्धु ने मूर्ति पर पाउडर छिड़क दिया। दही के घोल की तरह प्लास्टर घोलकर उसमें कुछ

नीले रंग की टिकिया डाल दी, उसके बाद उस नीले -घोल से बबुआ की मूर्ति के पीछे के हिस्से को नहलाने लगे। फिर दीनबन्धु ने दूसरा बर्तन उठाया। बबुआ आँखें फाड़-फाड़ कर देख रहा था। एक पतीले पानी में सफेद प्लास्टर का बेसन की तरह गाढ़ा घोल बना कर दीनबन्धु ने अब स्पैटुला से मूर्ति पर एक इंच के बराबर लेप लगाया। पीछे का हिस्सा मजबूत बनाने के लिए लोहे की सीक टेढ़ी कर फ्रेम की तरह टिका दी।

पीछे की तरफ मोल्ड का काम खत्म कर उन्होंने बबुआ के सामने के सिर में ब्रश से तेल लगाया। फिर नीचे प्लास्टर का घोल पोता। बबुआ चिल्लाया, "पिताजी मैं खो रहा हूँ।"

"तुम खो नहीं रहे हो बेटे, तुम इस घोल के अन्दर हो।"

प्लास्टर के बीच ढकी हुई मूर्ति कीचड़ की एक चट्टान-सी लग रही थी। दीनबन्धु अब सारा काम छोड़ कर बबुआ को लेकर खाना खाने के लिए चले गए।

दीनबन्धु ने सोचा था, खाना खाने के बाद बबुआ सोने चला जाएगा, पर बबुआ सोना-वोना भूल कर देख रहा था कि किस तरह दीनबन्धु सीम पर लगे प्लास्टर को करीने से निकाल रहे थे। फिर वहाँ वह आहिस्ते से थोड़ा-थोड़ा पानी डालने लगे। धीरे-धीरे साँचा प्लास्टर से अलग होता गया और दीनबन्धु ने पीछे की टेक हटा ली।

बबुआ का चेहरा भीतर छुपा हुआ था। सिर्फ पीछे का हिस्सा साफ-साफ दिखाई पड़ रहा था। अब दीनबन्धु ने छेनी और हथौड़े से मिट्टी की मूर्ति को तोड़ डाला। अब सिर्फ साँचा रह गया था। यह देख बबुआ गुस्सा गया। वह रो पड़ा था। बोला, "मैं कहाँ गया?"

"तुम हो, बेटे! तुम इस साँचे में कैद हो अभी!" स्पंज से साँचे के अन्दर का हिस्सा भिगोते हुए दीनबन्धु बोले।

"अब आप क्या करेंगे, पिताजी?"

"तुम्हारी मूर्ति में साबुन लगाऊँगा," दीनबन्धु हरे साबुन और दाढ़ी बनाने वाले ब्रश से झाग बनाने लगे। थोड़ी देर बाद उन्होंने मूर्ति पर फिर साबुन लगाया। अब मूर्ति थोड़ी सी चमक रही थी। दीनबन्धु ने बेटे से पूछा, "दाढ़ी बनाने के बाद मैं क्या करता हूँ?"

"आप तेल लगाते हैं, फिर नहाते हैं।"

"तो फिर लो, तुम्हारी मूर्ति को भी तेल लगा देता हूँ!" दीनबन्धु ने ब्रश पर थोड़ा तेल डाल कर सांचे के अन्दर डाला।

दो खाली अंशों को जोड़ कर, जोड़ की जगह अच्छी तरह प्लास्टर लगा कर दीनबन्धु ने नीचे के छेद से झाँक कर देखा कि कहीं रोशनी पहुँच तो नहीं रही है। उसके बाद उन्होंने प्लास्टर का पतला घोल अन्दर के छेद में डाल दिया, और सांचे को उल्टा रख कर वह बबुआ से गपशप करने लगे। बबुआ को वह चकित कर देंगे, इस ख्याल से उन्होंने उसे उसकी मां के पास भेज दिया।

थोड़ी देर के बाद मां और बेटे दोनों ही एक साथ स्टूडियो में लौट आए। दीनबन्धु तब तक सांचे में से बबुआ की मूर्ति निकाल चुके थे। बबुआ चिल्ला कर बोला, "यो तो मैं हूँ!"

"हां बेटे, तो तुम ही हो! पर यह भी पक्के तुम नहीं हो। प्लास्टर पर मोम लगा कर नेगेटिव बनेगा और गरम कांसे को गला कर फिर तुम्हारी मूर्ति ढालनी पड़ेगी। फिर कांसे को रगड़-रगड़ कर उसमें चमक लानी पड़ेगी, फिर उसे ऐसिड में डुबो कर उस पर रंग चढ़ाना पड़ेगा। उसके बाद ही तुम अक्षय बन पाओगे!"



"अक्षय बन जाओगे !" इतने वर्षों के बाद अपनी ही बात स्टुडियो की दीवारों से प्रतिध्वनि होकर दीनबन्धु पर व्यंग्य कर रही थी। बबुआ तो अक्षय नहीं हुआ ! लेकिन बबुआ की मूर्ति कहाँ गई ?

पुत्र-शोकातुरा माधवी के पति फिर मूर्तिकार बने ही क्यों ? माधवी को उपहार देने के लिए तिल-तिल कर बबुआ को गढ़ेंगे।

कम-से-कम दीनबन्धु ने ऐसा ही सोचा था। लेकिन दीनबन्धु बबुआ की मूर्ति नहीं बना पा रहे थे। जितना वह बना पाए थे, उसे देख कर उन्हें लगा कि वह कुछ भी नहीं बना पाए हैं। मिट्टी के उस टुकड़े को तोड़ कर दीनबन्धु नई मूर्ति बनाने लगे।

उन्हें अपने ऊपर सन्देह हो रहा था। फिर भी उन्होंने अपने मन को ढाढ़स बंधाया कि पहले भी कई बार ऐसा हुआ है। उन्होंने कोशिश की है। थोड़ा-कुछ बनाया भी है। और उसके बाद नाराज होकर उसे तोड़ दिया है। तोड़ने के बाद उन्होंने दुबारा जो कुछ भी बनाया, सबने उसकी तारीफ की है। आम लोग तो समझ भी न पाए कि इसके बनाने के पीछे मूर्तिकार के मन में कितनी शंकाएँ थीं।

दीनबन्धु ने निश्चय किया कि वह इस बार माधवी को मिट्टी का माडल नहीं दिखाएंगे। काम पूरा करने के बाद कांसे के बबुआ को घर में प्रतिष्ठित कर देंगे। उसके बाद वह क्या करेंगे, उसका भी निश्चय कर लिया था उन्होंने। स्टुडियो के अहाते में जब कोई भी नहीं रहेगा, रात की निस्तब्धता जब इस शहर के अशान्त आदमियों को अन्धकार में छुपा लेगी तब वह अपनी पत्नी का आह्वान करेंगे, "आओ माधवी !"

माधवी पूछेगी, "तुम मुझे कहां ले चल रहे हो ?" दीनवन्धु चुपचाप कुछ वोले विना माधवी का हाथ पकड़ कर उसे स्टुडियो में ले आएंगे। वत्ती नहीं जलाएंगे। अन्धेरे में ही ढूँढ़-ढाँढ़ कर एक मोमवत्ती जलाएंगे और उसके वाद वोलेंगे, "माधवी, देखो मैं किसे लौटा कर लाया हूँ।"

उसके वाद दीनवन्धु अपने वन्द हृदय के दरवाजे खोल कर जी भर कर फूट-फूट कर रोएंगे। माधवी को छाती से लगा कर वहुत देर तक सिसकेंगे, जिस तरह ववुआ के प्राणहीन शरीर के आगे वह वेसुध होकर सिसकते रहे थे। लेकिन इसी वीच वाहर दरवाजे पर घण्टी वजी। जरूर सुतपा सेन आई होगी।

आज सुतपा सेन वड़ी सजधज कर आई थी। शरीर की सेकेण्डहैण्ड गाड़ी पर रंग चढ़ा कर लेडी सुतपा उसे नई वता कर चलाना चाहती थी।

ऐसा अजीव शृंगार करने से क्या फायदा, जिससे शरीर के सारे अंग उभर कर सामने आ जाएँ। दीनवन्धु इस वात को कभी नहीं समझ पाए। ओठों पर, आँखों में, भौं पर सभी जगह सुतपा ने भारी मेकअप किया था। वह शायद भूल गई थी कि वह किसी फोटोग्राफर के पास नहीं, वल्कि एक मूर्तिकार के पास सिटिंग दे रही थी।

वह वोली, "मैंने सुना है, हर मूर्ति में तुम अपना एक खास वक्तव्य उत्कीर्ण करते हो। मेरी मूर्ति में कौन-सा वक्तव्य उकेरोगे, दीनू दा ?"

"वक्तव्य मैं नहीं देता, रमा ! शरीर का जो वक्तव्य होता है उसे ही वताने की अनुमति मैं मूर्ति को दे देता हूँ।"

"एक वात पूछूं ? मेरा शरीर तुम्हें क्या वता रहा है ?"

"तुम्हारे शरीर ने किसी कलाकार को कभी क्या कहना चाहा था, यह तुम जानती हो, रमा !" दीनवन्धु ने कहा।

"जानती हूँ ! वह भूलने की वात नहीं है, दीनू दा ? मेरे शरीर को सामने रख कर तुम फिडियस और माईकेल एंजेलो के साथ वरावरी करना चाहते थे।"

"उनकी वरावरी करूं, इतना दुस्साहस मुझ में नहीं है। पर हां, मैं भी रूप की सृष्टि करना चाहता था। इस युग की नारी भी सुन्दर है, मैं

भविष्य के सामने उसका प्रमाण रखना चाहता था।" फिर थोड़ा रुक कर दीनबन्धु बोले, "पर तुम इतनी उद्विग्न क्यों हो रही हो, रमा? तुम्हारे चेहरे पर उत्कण्ठा की छाया अगर पड़ी तो मेरी मिट्टी की मूर्ति पर भी वही छाप रह जायेगी।"

"मूर्तिकार की मर्जी पर दिल में भरोसा नहीं होता। सुविनय पार्क में स्थित सुविनय बाबू की तुमने जो मूर्ति बनाई है, उसे मैंने कल घर जाते समय अच्छी तरह देखा था।"

"तुमने उसे देखा है? बहुत-से लोग सुविनय सिंह की मूर्ति को मेरे तीन श्रेष्ठ कामों में गिनते हैं।"

"मैं जानती हूँ, दीनू दा कि सुविनय सिंह की मूर्ति बनाने के लिए तुम्हे बड़ी प्रशंसा मिली है। मैं यह भी जानती हूँ सुविनय सिंह के चरित्र के प्रधान गुणों को तुम मूर्ति में उभार सके हो। सुविनय बाबू उच्चाभिलाषी थे, वह मेरे ससुर के पार्टनर थे। तुम्हारी बनाई उनकी मूर्ति को देखने पर उनकी महत्वाकांक्षा की छाप उभर आती है।"

दीनबन्धु बोले, "सुविनय सिंह सीधी गर्दन और सिर उठाकर खड़े हैं। उनके सिर का आकार, ऊँचा मस्तक और भौं की बनावट देखने से ही मालूम हो जाता है कि वह बड़े घर के लड़के थे। उन्हे छोटे-से बड़ा नहीं बनना पड़ा था और उनके देखने की भंगिमा से साफ समझ सकती हो कि वह नितान्त बेवकूफ भी नहीं थे।"

"पर असल बात तुम छुपा रहे हो!" इस बार तो रमा ने दीनबन्धु को अवाक् ही कर दिया। बोली, "और कोई समझे या न समझे, पर बचपन में तुम्हारे साथ घूम-घूम कर कुछ खास इशारों को समझने की दृष्टि मेरे पास भी है।"

"क्या है बोलो तो?" दीनबन्धु काम करते-करते थोड़ा सहम कर बोले।

"उनके प्यासे ओठ, डबल चिबुक, और थोड़ी लहर खाती हुई नाक के माध्यम से तुमने जो कुछ चाहा है, मैं उसे पकड़ सकती हूँ।"

सुतपा थोड़ा रुकी। उसके बाद बोली, "तुमने सुविनय सिंह के शरीर की भूख को स्पष्ट कर दिया है। सुविनय बाबू के लड़के यह नहीं जानते

लोगों के हजारों किस्म की समस्याओं को लेकर मैं काफी व्यस्त रहती हूँ। अभी अमेरिका जाना है। कई महीनों के बाद लौटूंगी। वहां अपने फार्म के ऋण की अदायगी करूंगी। कुछ और भी जानना हो तो पूछो, दीनू दा!" सुतपा ने अपने को स्पष्ट किया।

दीनबन्धु ने कोई जवाब नहीं दिया। वह फिर बोली, "मुझे तो डर ही लग रहा था, दीनू दा! क्या पता, तुम कहीं यह न कह बैठो कि तुम अभी न्यूडस्टडी करोगे। तुम्हें इसकी जरूरत नहीं पड़ी। जान-में-जान आई!"

दीनबन्धु बोले, "आज यहीं तक काम रहने देते हैं।"

सुतपा का टेलीफोन आया, "मूर्ति आज दिखला रहे हो?"

"आज आने पर तुम मेरी कल्पना-लोक की सुतपा को देख पाओगी।"

"मेरे देखने से पहले किसी और को नहीं दिखलाना, दीनू दा!"

"तुम अपने दफ्तर के पी. आर. ओ. को भी ला सकती हो।"

"नहीं-नहीं दीनू दा, पी. आर. ओ., जी. एम. यहां तक कि मेरे पति को भी नहीं दिखलाना। मैं अभी आ सकती हूँ?"

"इस समय नहीं, रमा! शाम को आठ बजे आना। इस समय मैं किसी और काम में व्यस्त हूँ।"

"कुल पांच ही मिनट तो लगेंगे!" सुतपा व्याकुल हो कर बोली।

दीनबन्धु को फिर भी सुतपा को 'ना' करना पड़ा।

सुतपा को थोड़ा कष्ट जरूर हुआ होगा, पर दीनबन्धु कर भी क्या सकते थे। बाहर के लोगों को वह कैसे समझाते कि वह किसी गम्भीर और बड़े काम में उलझे हुए थे। जीवन में वह कभी भी इतने व्यस्त नहीं रहे।

दीनबन्धु मन-ही-मन बबुआ को पुकार रहे थे, "बबुआ, तुम जहाँ भी हो, एक बार कम-से-कम एक बार आकर मेरी इस मिट्टी की मूर्ति को छू जाओ!"

दीनबन्धु अपनी कला में बबुआ की मुखाकृति को थोड़ा-बहुत ला पाए थे। यह कोई बहुत कठिन कार्य भी नहीं था। गोल-गोल चेहरे में निष्पाप

बड़ी-बड़ी दो आँखें। पतले ओठ, छोटा-सा मुंह, नाक थोड़ी-सी दबी हुई। बचपन में किसी ने उसे तिब्बती कह दिया था।

"बबुआ मेरे, राजा बेटे तुम आओ! अपने चेहरे की स्वर्गीय सुषमा को मुझे पकड़ने दो।!" मूर्तिकार दीनबन्धु मन-ही-मन प्रार्थना करने लगे।

दीनबन्धु किसी अफीमची की तरह जागकर भी स्वप्न देख रहे थे। पुराने समय का वह मूर्तिकार—जिनका नाम पिगमैलियन था—उसने अपनी कल्पना से एक ऐसी नारी-मूर्ति की सृष्टि की थी कि वह स्वयं उस नारी के प्रेम में पड़ गया। वह उस नारी की सुन्दरता में ही हमेशा खोया-खोया रहने लगा। अन्त में दयावश देवी वीनस ने उसकी प्रार्थना मन्जूर की। पत्थर की मूर्ति मानव-शरीर धारण कर अपने शरीर का सारा सौन्दर्य लिए हुए पिगमेलियन को समर्पित हुई। स्वप्न की लीला-संगिनी को प्रत्यक्ष पाकर मूर्तिकार का जीवन भी सार्थक बना। दीनबन्धु ने मन-ही-मन सोचा—कौन जानता है, उनकी प्रार्थना से बेचैन होकर देवता शायद किसी एक और मूर्तिकार पर कृपा बरसाएँ और बबुआ अचानक सजीव हो उठे।

अगर सचमुच ही थोड़ी देर के लिए बबुआ उनके पास लौट आए तो दीनबन्धु यह स्वीकार करेंगे कि उनसे बहुत बड़ा अपराध हुआ था। वह बबुआ को प्यार से चूम कर बताएंगे, "मेरे बबुआ, यदि मैं जानता कि तुममें इतना स्वाभिमान है तो मैं वैसा काम करता ही नहीं। तुम तो मेरे पास थे, इसीलिए तो मैं तुम्हारी छाया का मूल्य नहीं जान पाया···' सोचते-सोचते दीनबन्धु का सारा शरीर रोमांचित हो उठा। वह अपनी भूल को कैसे सुधारें? कैसे वह किसी को समझाएं कि उन्होंने पैसों के लिए बबुआ को नहीं बेचा था।

उन दिनों पैसों की कमी अवश्य थी। पैतृक मकान के किराए के पैसे यदि न मिलते रहते तो मूर्तिकार बनने का उनका शौक कब का मटियामेट हो जाता। किराए के पैसों से रोजमर्रे का गुजारा हो जाता था। लेकिन रुपये की बड़ी जरूरत थी। एक सफेद पत्थर की जरूरत थी, पर दीनबन्धु के पास उतने पैसे भी नहीं थे।

सफेद पत्थर खरीदना बड़ा जरूरी था। इतना बढ़िया सफेद पत्थर दुकानदार सिर्फ पांच सौ रुपयों में दे रहा था। पत्थर वाले दुकानदार के गोदाम में यह पत्थर बहुत दिनों से पड़ा था। दुकानदार ने कहा भी था, "ले जाइये बाबू, बाद में समझेंगे कि आपने क्या चीज पाई है!"

पत्थर वाकई बड़ा सुन्दर था। उस पत्थर से बड़ी आसानी से एक पूरे आकार की मूर्ति बन सकती थी। दीनबन्धु सोच ही रहे थे कि इसके लिए वह कहां से पैसे लाएंगे। इसी बीच एक मौका आया। या फिर ईश्वर ने जानबूझ कर जाल बिछा कर दीनबन्धु को फंसाने के लिए उस साहब को उनके स्टुडियो में भेजा था। ढूंढ-ढूंढ कर वह साहब दीनबन्धु के स्टुडियो में पहुंचा था। दीनबन्धु ने पूछा था, "मैं तो एक अज्ञात मूर्तिकार हूँ। आपको मेरे बारे में किसने बताया?"

"अज्ञात व्यक्ति ही कभी विख्यात बनता है," साहब ने कहा था, "तुम्हारे देश में इन सब चीजों का अभ्यास कम होता है। इसलिए बाहर से स्टुडियो का नाम पढ़ कर अन्दर चला आया।"

साहब ने घूम-फिर कर सारा कुछ देखा। फिर बबुआ की मूर्ति के पास आ कर खड़े हुए। थोड़ी देर तक मन लगा कर उसे देखते रहे, फिर बोले, "क्या मैं इसका दाम पूछ सकता हूँ?"

दीनबन्धु को इसके पहले कभी इस तरह से मूर्ति बिक्री का मौका नहीं मिला था। अचानक उनके मुँह से निकल गया, "छह सौ रुपये।"

साहब तुरंत राजी हो जाएंगे, दीनबन्धु को बिल्कुल उम्मीद नहीं थी। वह दुविधा में पड़ गए।

साहब ने कहा, "आपने जो दाम माँगा है, मैं उसी दाम पर खरीदूँगा।"

"इस मूर्ति को मैं बेचूँ या नहीं, मैं समझ नहीं पा रहा हूँ। यह मेरे बेटे की मूर्ति है।"

"आपका बेटा जब आप ही के पास है तब तो आप और भी मूर्तियाँ बना सकते हैं। यह मूर्ति दूसरे के घर पहुंच कर आपकी ख्याति ही बढ़ाएगी।"

दीनबन्धु फिर भी सोच रहे थे। एक कार्ड देकर साहब बोले थे, "मैं

इस होटल में आज रात के लिए ठहरूँगा। फिर कल सुबह ही चला जाऊँगा। अगर आपकी इच्छा हो तो मूर्ति लेकर होटल में आ जाइएगा। रुपये वहीं मिल जाएंगे।"

शाम तक दीनबन्धु ने निश्चय कर लिया। ठीक उसी समय बबुआ दौड़ा हुआ आया और बोला, "पिताजी, चींटी।"

"चींटी तुम्हें काट रही है ? कहां ?"

दीनबन्धु को चींटी कहीं नहीं दिखाई पड़ी। अब बात उनकी समझ में आई। बबुआ के कांसे की मूर्ति पर चींटी चढ़ी थी, इसलिए बबुआ बेचैन था।

चींटी को हटा कर दीनबन्धु ने झटपट कांसे की मूर्ति को पैक कर लिया। फिर टैक्सी बुला कर बबुआ से बोले, "चलो, थोड़ा घूम आते हैं।"

मोटर गाड़ी में बैठ कर बबुआ ने कहा, "हम तीन जने कहाँ जा रहे हैं ?" वह अपनी मूर्ति को भी व्यक्ति समझता था।

"हम एक बहुत बड़े होटल में, एक बहुत बड़े साहब के साथ गपशप करने के लिये जा रहे हैं। उसके बाद चाकलेट, मिठाइयाँ बहुत सारी खरीदेंगे।"

दीनबन्धु को देखते ही साहब बोले, "तो आप आ गये ! वैरीगुड !" फिर मूर्ति को देखते हुए साहब बोले, "आप कभी इसकी कापी तो नहीं करेंगे ?"

"इस मूर्ति के प्लास्टर के सांचे को मैं खुद तोड़ चुका हूँ। मैं खुद नहीं चाहता इसकी कोई नकल बने।"

साहब ने सौ-सौ के छह हरे नोट जेब से निकाल कर दिए थे। नोट ले कर दरवाजे से बाहर खड़े बबुआ का हाथ पकड़ कर दीनबन्धु बोले, "चलो बबुआ !"

उन्होंने होटल से बाहर निकल कर दुकान से चाकलेट और बिस्कुट का डब्बा खरीद कर बबुआ को दिया, पर वह मुंह फुलाए खड़ा रहा। अचानक बबुआ ने पूछा, "मुझे आप नहीं ले चलेंगे, पिताजी ?"

"तुम तो बेटे, मेरे साथ ही जा रहे हो," दीनबन्धु ने बबुआ को शान्त करना चाहा, पर बबुआ जल्दी मानने वाला बच्चा नहीं था। उसका

चेहरा लाल हो उठा।

बाहर टिप् टिप् टिप् पानी बरस रहा था। बबुआ हर समय सब का कहना मानता था, पर उस दिन अपने पिता का कहना टाल कर वह वापस होटल में घुस जाना चाहता था। दीनबन्धु जबर्दस्ती उसे गोद में ले कर पानी में भीगते हुए बस स्टैण्ड की तरफ दौड़ पड़े थे।

पत्थर की दुकान वहाँ से ज्यादा दूर नहीं थी। वहाँ रुपया जमा करके दीनबन्धु एक कपड़े की दुकान में गये। बबुआ के लिए चमकीली कमीज खरीदी। फिर भी बबुआ हँसा नहीं।

घर आ कर भी बबुआ एक ही रट लगाए रहा, "पिताजी मुझे कहाँ छोड़ आए ? मुझे ले आइए !"

दीनबन्धु और माधवी ने बबुआ को कितने ही तरीकों से समझाने की कोशिश की, पर बबुआ रोता ही रहा।

उसी रात बबुआ को तेज बुखार आया। माधवी ने पूछा था, "बबुआ क्या पानी में भीग गया था ?"

"नहीं, कोई खास तो नहीं।"

तेज बुखार और बेहोशी की हालत में भी बबुआ बकता रहा, "मुझे कहाँ छोड़ आए, पिताजी ?"

शर्म से गड़ कर दीनबन्धु बोले, "तुम्हें और भी अच्छी मूर्ति बना कर दूँगा, बबुआ !" पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। दीनबन्धु ने ईश्वर से कातर प्रार्थना की। लेकिन सारी प्रार्थना को विफल बना कर बबुआ उन लोगों को हमेशा के लिये छोड़ गया।

उसके बाद ही दीनबन्धु के जीवन में सफलता आसन-पाटी जमा कर बैठ गई। लगातार कई अच्छे काम मिले और उन कामों के जरिये उन्हें ख्याति और प्रतिष्ठा मिली। उनके जीवन की धारा ही बदल गई।

इस बीच बबुआ की एक और मूर्ति बनाने की बात दीनबन्धु ने कई बार सोची थी। पर माधवी की बात सोच कर ही वह अपनी इच्छा को रूप नहीं दे सके थे। वह सोचते, कहीं माधवी का सोया हुआ शोक फिर जाग न जाए। और उसके बाद तो काम के बोझ में सब-कुछ भूल कर दीनबन्धु किसी और ही दुनिया में खो गये थे। वह यह नहीं समझ सके

जो कुछ उन्होंने समझ रखा था वह गलत था। माधवी को हर बात
द थी। दीनवन्धु नहीं जानते थे कि शोक का ज्वालामुखी इतने दिनों के
द फूटेगा।

दीनवन्धु वाकई अपने को अपराधी महसूस कर रहे थे। प्रतिष्ठा के
संग्राम के दिनों में संतान-शोकातुरा माधवी ने उन्हें साहस और सान्त्वना
दी थी। अपने दुःख को अव्यक्त रख कर वह हमेशा मुस्कराती रहती थी।
माधवी ने अपना कर्तव्य पूरा-पूरा निभाया था। पर पुत्रशोकातुरा माधवी
को वदले में कला-साधना में रत मूर्तिकार दीनवन्धु क्या दे पाए थे? वहुत
दिन, वहुत वर्षों तक शोक के पत्थर को छाती में दवा कर अन्ततः माधवी
टूट ही गई थी।

सचमुच इतने दिनों तक दीनवन्धु क्या करते रहे थे? जो ववुआ
उनकी आँखों की ज्योति था, वह कव मन से उतर गया, उन्हें पता ही नहीं
चला। इतने दिनों की अधीर प्रतीक्षा के वाद ववुआ ने उनसे मुँह मोड़
लिया था। दीनवन्धु कल्पना में भी उसे पकड़ नहीं पा रहे थे। असफल
कोशिश में दीनवन्धु अपनी सन्तान को न जाने कितनी वार तोड़ रहे थे।
अग्रगण्य चिरशिल्पी दीनवन्धु अपनी स्मृति से एक सामान्य मूर्ति को
आकार नहीं दे पा रहे थे। कोई कैसे विश्वास करेगा?

दीनवन्धु ने दुख प्रकट किया—काश! एक वार अगर पहले की
वनाई हुई उस मूर्ति को वह देख पाते। दुनिया के न जाने किस संग्रहालय
में नामहीन, परिचयहीन कांसे का ववुआ अपने माँ-वाप के लिए रो रहा
था। सिर्फ एक वार अगर दीनवन्धु अपनी उस सृष्टि को देख पाते!

पर यह क्या सम्भव था? जो दुनिया की भारी भीड़ में खो गया था
उसे ढूंढ़ पाना क्या आसान था? हो सकता था कि इसी शहर में वह कहीं
न-कहीं स्वाभिमानवश निस्तब्ध पड़ा था और उसका पिता पागलों की
तरह पारसमणि को ढूंढ़ता भटक रहा था।

"मास्टर साहव, आपकी तवियत तो ठीक है न?" दीनवन्धु
उठे। देवीदास कव आया, उन्हें पता ही नहीं चला।

"देवीदास, तुम मेरा एक उपकार कर सकोगे? एक बार अखबार के दफ्तर में जा सकोगे?"

"जरूर जाऊँगा!"

दीनबन्धु से उनका मन्तव्य समझ कर देवीदास चला गया।

"मैं आ सकती हूँ?" रोल्स रायस की अधिकारिणी सुतपा सेन ठीक आठ बजे स्टूडियो में पहुँच गई। मानो ठीक समय पर पहुँचने के लिए वह बाहर खड़ी प्रतीक्षा ही कर रही थी।

"आओ!" दीनबन्धु ने सादर आमन्त्रण दिया।

अधेड़ उम्र की सुतपा गाढ़ी गुलाबी रंग की चमकदार सिल्क की साड़ी बांध कर आई थी। साड़ी का पल्लू सम्हालती हुई बोली, "तुम्हारे यहाँ आने का रास्ता इतना संकरा है कि रोल्स को यहाँ लाना एक कठिन काम है, पर अब्दुल ड्राइवर बड़ा पक्का ड्राइवर है। उसके अलावा इस गाड़ी को मैं किसी दूसरे को हाथ भी नहीं लगाने देती।"

"अच्छा ही करती हो, रमा! कोई भी चीज किसी एक के हाथ में ही रहने पर अच्छी रहती है और टिकती भी अधिक है," दीनबन्धु बोले।

"अच्छा दीनू दा, एक बात बताओ, आज क्या तुम्हारी तबियत खराब है?" रमा की आवाज में उत्कण्ठा थी।

"नहीं कोई खास नहीं," दीनबन्धु बोले।

सुतपा बोली, "बुरा मत मानना दीनू दा, पर तुम कैसे ही तो हो गए हो। जिस दीनू दा के स्टुडियो में मैं बहुत साल पहले आती थी, उस दीनू दा-जैसे तुम अब रहे नहीं!"

गहरा दु:ख प्रकट करते हुए दीनबन्धु बोले, "दुनिया की हर चीज बदल जाती है। सिर्फ पत्थर, कांसा आदि नहीं बदलते। और इन्हीं के बल पर मूर्तिकार दुनिया में टिका है।"

सुतपा बोली, "मैं इतना कुछ नहीं समझती। इतने दिनों से स्टुडियो आ रही हूँ, फिर भी तुमने भाभी से परिचय तक नहीं करवाया।"

"माधवी अस्वस्थ है, रमा", दीनबन्धु बोले।

"क्या? क्या हुआ है उसे?"

"समय पर सब जान जाओगी", दीनवन्धु सुतपा के प्रश्न को टाल गए।

"हमारे चीफ मेडिकल अफसर काफी होशियार और नामी डाक्टर हैं। कहो तो उन्हें भिजवा दूं!"

"जरूरत पड़ी तो तुम्हें जरूर कहूँगा।"

"मेरा माडल तैयार है?"

"हाँ तुम तैयार हो गई हो!" दीनवन्धु ने सफेद कपड़े से ढंकी एक मूर्ति की तरफ इशारा किया। फिर दीनवन्धु स्वयं जाकर मूर्ति के पास खड़े हो गए। मानो वह कोई जादूगर हों और कोई खास खेल दिखलाने के लिए सुतपा को स्टेज पर बुला रहे हों।

"अपनी कला को दिखाने के पहले अपने मन की बात बताओ, दीनू दा", अनुरोध के स्वर में सुतपा बोली।

"रमा, तुम तो जानती हो, मूर्तिकला एक ऐसी कला है, जिसके लिए शब्दों की जरूरत नहीं पड़ती। यानि किताब, कुंजी, टिप्पणी आदि से जिस सौन्दर्य को समझा जाता है, वह मुझे पसन्द नहीं। फिर भी अगर तुम चाहती हो कि मैं अपने मन की बात बताऊँ, तो मैं यही कहूँगा कि हर मुश्किल को झेलकर भी मैंने इस काम में अपना सारा मन-प्राण लगा दिया है। मिट्टी से जब यह कांसे में ढाली जाएगी तब यह और भी सुन्दर हो उठेगी। कांसे पर कहीं-कहीं हरे रंग के छींटे डाल दूंगा।"

"कांसे पर तुम चाहे कोई भी रंग चढ़ा सकते हो?" सुतपा ने पूछा।

"यह एसिड पर निर्भर करता है। लिवर आफ सलफर से मूर्ति को नहलाने पर साफ, लेकिन हल्का पीला रंग चढ़ेगा। कौपर सल्फेट देने पर मटर की तरह हरा रंग चढ़ेगा। यूरिक एसिड देने पर गहरा हरा होगा। अगर तुम्हारी इस मूर्ति को कुछ दिनों तक मिट्टी के नीचे गाड़कर फिर उसके बाद यूरिक एसिड दिया जाए तो कहीं-कहीं हरे छींटों के निशान आएँगे और बीच-बीच में गाढ़े भूरे रंग का दाग पड़ेगा।"

सुतपा को यह सब जानना या सुनना अच्छा ही लग रहा था, पर मूर्ति को देखने के लिए वह बेचैन हो उठी, मानो सुहाग रात में पहली बार घूंघट उठाया जा रहा था। रक्त-मांस की सुतपा और मिट्टी की सुतपा के

बीच चार आँखों का मिलन होगा। दीनबन्धु ने आहिस्ते से मूर्ति पर से सफेद कपड़े के आवरण को हटा दिया।

एक बोर्ड पर, दोनो पैरों को पीछे की तरफ मोड़ कर विगत यौवना सुतपा जन-विहीन निर्जन मे बैठी हुई थी।

सुतपा के कण्ठ से एक आर्तनाद-सा उठा। उस आर्तनाद से स्टूडियो की निस्तब्धता भंग हो गई।

"यह क्या ? यह क्या किया है तुमने ?" कातर कण्ठ से लेडी सुतपा रो पड़ी।

. स्रष्टा दीनबन्धु धीरे-धीरे अपने मन मे अंग्रेजी मे बोल रहे थे :

'Ah traitorous old age! Where is my white forehead, my golden hair, my beautiful shoulders ? These breasts—these hips—these limbs—dried and speckled as sausages).'

(आह...निष्ठुर बुढ़ापा ! कहाँ गया मेरा गोरा मुखड़ा, मेरे सुनहरे केश, मेरे सुन्दर कन्धे ? ये मेरे उरोज, मेरी कटि, मेरी बाहें—सूखी और बदरंग।)

"नही ! नही, यह मैं नही हूँ ! इसका तुमने कहाँ से आविष्कार किया है, दीनू दा ?" मूर्त्ति की शक्तिहीन बाहे, पतली ग्रीवा, सिकुड़े हुए चनड़े की तरफ वह देख नही पा रही थी। उसने अपनी आँखें बन्द कर ली। फिर कुछ देर बाद आँखें खोल कर अजीब निरर्थक दृष्टि से देखती रही। उनकी नीरव आँखें मानो पूछ रही थी, "शरीर का ऐश्वर्य खोकर सिर्फ [illegible] घमण्ड लेकर तुम अब भी जी रही हो ?"

दीनबन्धु ने खुद भी नहीं सोचा था कि वह इतने [illegible] जाएँगे। यह क्षण हर कलाकार के लिए सबसे [illegible] लेकिन लेडी सुतपा के ऊपर उसकी इतनी भयंकर [illegible] वह नही समझ पाए थे। क्या सुतपा [illegible] है ? अगर देखती है तो उसे जानना चाहिए [illegible] सुतपा को छोड़कर बहुत पहले ही जा चुकी [illegible]

दीनबन्धु बोले, "सुतपा [illegible]

शरीर में थी, यह भाव भी मूर्ति की आँखों में है।"

"आँखों की जगह उस गड्ढे में मानो दो गोल अंगूर बैठा दिए गए हों," किसी तरह सुतपा बोल पाई।

"हमारे मास्टर साहब कहते थे, प्रत्येक की आँखें एक जोड़ी अंगूर की तरह हैं। अंगूर की चारों तरफ आँख का जो कोष्टक है उसकी विशिष्टता ही अनुभूति तथा भावों को प्रकाश में लाती है।"

सुतपा पसीने-पसीने हो रही थी। वह एक कुर्सी खींचकर उसमें धम्म से बैठ गई। बोली, "दीनू दा तुम बड़े निष्ठुर हो। इतने वर्षों के बाद भी तुम मुझे माफ नहीं कर पाए। आज इस तरह से मुझसे बदला ले रहे हो ?"

"तुम क्या कह रही हो, रमा ? तुम ने ऐसा क्या किया था कि मैं तुम से बदला लेने की सोचूँगा ?"

"दीनू दा, मेरी आँखों के सामने तुम उस बुढ़िया को तोड़कर चूर-चूर कर दो !"

दीनबन्धु ने थोड़ी देर चुप रहने के बाद अपना सिर उठाया। बोले, "रमा, मैं कुछ समझ नहीं पा रहा हूँ। क्या तुम आइने में अपने को नहीं देखती हो ?"

"देखती क्यों नहीं, दीनू दा ? देखती हूँ तभी तो दूसरे सभी मूर्तिकारों को छोड़कर मैं तुम्हारे पास आई थी। एकमात्र तुम ही थे जो खोई हुई रमा को वापस लौटा सकते थे। लेडी सुतपा सेन को सहना पड़ता है, इसलिए सहती हूँ, लेकिन रमा को मैं इस दुनिया में छोड़ जाना चाहती हूँ, दीनू दा !" सुतपा की आवाज में मिन्नत थी।

दीनबन्धु हतप्रभ होकर खड़े रहे।

"तुम इतना कुछ समझते हो, दीनू दा ! आदमियों के मन की इतनी खबर रखते हो और इतनी-सी बात तुम्हारे दिमाग में नहीं आई !" रोल्स रायस की मालकिन लेडी सुतपा सेन असहाय-सी अपना अभियोग प्रस्तुत कर रही थी, मानो दीनबन्धु स्वयं सृष्टिकर्ता हों।

"सुतपा सेन की इस मूर्ति में रमा भी छुपी हुई है, तुम अच्छी तरह से तो देखो !" दीनबन्धु के स्वर में अनुरोध था।

सुतपा ने मूर्ति पर फिर नजर दौड़ाई, "तुम क्या कहते हो दीनू दा, मेरी समझ मे कुछ नही आया। एक बुढ़िया से तुम रमा का खून करवाना चाहते हो ?"

दीनबन्धु बोले, "विश्वास करो, तुम्हारे इस शरीर मे मैं समग्र विश्व को देख पा रहा हूँ—मनुष्य का शरीर तो नित्य वृन्दावन है।"

"काव्य की बात छोड़ो, दीनू दा ! मनोजगत का कौन-सा ऐश्वर्य तुम ने उस बुढ़िया को दिया है, उसमे मुझे जरा भी दिलचस्पी नही। सेन परिवार मन के ऐश्वर्य के लिए अप्रकाश बाबू की लड़की को बहू बनाकर नही ले गए थे !"

दीनबन्धु यह कैसी विपत्ति मे पड़ गए ! आमतौर पर जो सम्भव नही है, समय के प्रवाह को भी दीनबन्धु ने सुतपा की मूर्ति मे पकड़ रखने की कोशिश की थी। शरीर को विकृत किए बिना ही परम रूपसी सुतपा की मर्म वाणी को उन्होंने मूर्ति में मुखरित किया था। बूढ़ी सुतपा में यौवनावती रमा की मर्म वाणी को ही उद्घाटित कर पाए थे। शरीर की सीमा मे रहकर ही शारीरिक विकृति, मनुष्य का अस्तित्व, वृद्धि, परिणति और विनाश सब कुछ उन्होंने उकेरा था। प्रस्फुटित शरीर ही क्षीण होकर अन्त में विनष्ट हो आता है !

रमा तो ऐसी रूप की लोभी कभी नहीं थी। दीनबन्धु ने कहा, "रमा ! अगर तुम्हारी मूर्ति की तरफ कोई देखे तो वह सब कुछ देख पाएगा। तुम्हारी दोनों आँखें सब कुछ बता रही हैं। अपनी माँ की [illegible] लाड़ली हो तुम। बचपन के उस दुलार की छाया जो इन आँखों में है। उसके बाद दुनिया ने तुम्हारे सामने अपने रहस्य का पर्दा उठाया। तुम्हारी आँखों ने सूर्य को उगते देखा, फूलों को देखा, फलों को देखा। [illegible] के कोने में तुम गुड़िया लेकर खेलती थीं, तुम्हारा [illegible] है। उसके बाद तुम बड़ी होने लगी। दुनिया नया रहस्य लेकर [illegible] आई, तुम शरीर की सम्भावनाओं के प्रति [illegible] तुम्हारी आँखें कह रही हैं, शरीर के ऐश्वर्य की [illegible]

कार के साथ म्यूजियम में यक्षिणी की मूर्ति को देखने गई थी। उसके बाद तुम सुतपा सेन बन गई। बहुत धन मिला तुम्हें। लेकिन तुम्हारा मोह टूट गया। सब कुछ पाकर भी तुम्हें मानो कुछ भी नहीं मिला। अगर कोई ठीक से देखे तो ये सारी बातें वह इस मूर्ति में देख पाएगा।"

दुख और वेदना से सुतपा का चेहरा विकृत लग रहा था। बोली, "उस दिन का सच और आज का सच एक नहीं है।"

"जब तक मैं जिन्दा हूँ, यह मूर्ति कहीं भी स्थापित नहीं होने दूँगी।"

"यह तुम्हारी मर्जी है, रमा! पसन्द न होने की वजह से मेरी बनाई हुई बहुत-सी मूर्तियों को कहीं भी जगह नहीं मिली है। पर उससे अब मेरे मन को ठेस नहीं लगती।"

"दीनू दा, तुम मुझे गलत मत समझना।"

"मैं किसी को गलत नहीं समझता सुतपा! मेरा मन आज कई कारणों से बड़ा अशान्त है। आज मुझे छुट्टी दो। सिर्फ एक बात याद रखना—जो चीज अधिक दिनों तक नहीं टिकती, उसके प्रति मोह बढ़ाने से दुख ही मिलता है। यौवन सबसे बाद में आता है, पर सबसे पहले चला जाता है।"



उस दिन सुतपा चली गई थी, पर उसने पूरी उम्मीद छोड़ी नहीं थी। वह 'फिर आऊँगी' कह कर गई थी।

दीनबन्धु एक महान संकट से गुजर रहे थे। उन्हें लगता था जैसे बबुआ और सुतपा दोनों उन्हें जकड़ कर खत्म करने पर तुल गये थे। बबुआ की इतनी मिन्नतों के बावजूद वह पकड़ में नहीं आ रहा था और सुतपा मिन्नतें कर रही थी, पर दीनबन्धु उसकी पकड़ में नहीं आ रहे थे। काश! उन्हें अगर कहीं से थोड़ी शान्ति मिल पाती। इस घुटन भरे वातावरण से यदि कोई उन्हें थोड़ी देर के लिए भी दूर ले जा सकता तो दीनबन्धु जरूर जाते। अगर ऐसे समय में उनका ऐसा अपना होता, जिसके आगे वह अपने को पूरी तरह से खोल पाते तो कितना अच्छा होता!

दुनिया में एक ही ऐसी थी जिसने उनके विषम संकट के दिनों में हमेशा हिम्मत बंधाई थी उसका नाम था माधवी। पर आज तो वह रह कर भी नहीं थी। पति को सफलता के दरवाजे तक पहुँचा कर उसने अपने को सन्ताप की कारा में बन्द कर लिया था। दीनबन्धु में इतनी शक्ति भी नहीं थी कि वह माधवी को यह समझाते कि बबुआ की मूर्ति उन्होंने यों ही बेच दी थी। उनको इसका जरा भी आभास होता कि इससे लड़के के मन में इतनी गहरी चोट लगेगी तो वह हर्गिज-हर्गिज ऐसा कदम नहीं उठाते।

और इसके लिए तो उन्हें दण्ड भी काफी मिल चुका था। पर उन पर दया किसे थी? क्या कोई बबुआ की मूर्ति उन्हें फिर से देखने से लिए दे सकता था? और सुतपा? उसके पास तो अपार ऐश्वर्य था। दुनिया में

ऐसे मूर्तिकारों की कमी नहीं थी, जो उसका मनोरंजन कर पाने का मौका पा कर अपने को धन्य मानते। दीनबन्धु ने मन ही मन सुतपा से विनती की, "मुझे तुम रिहाई दो। मैं थोड़ी शान्ति से रहना चाहता हूँ। विश्वास करो, जवानी के दिनों में तुमने मेरे साथ जो अन्याय किया था, उसका मैं बदला लूं, मेरे पास इतना भी समय नहीं!"

क्रिग-क्रिग कर टेलीफोन की घण्टी बज रही थी। दीनबन्धु ने रिसीवर उठाया, "आपने आज अखबार में कोई विज्ञापन दिया है? किसी बच्चे की मूर्ति के मामले में?"

"हाँ-हाँ, दिया है। कोई खबर है क्या?"

"मेरे पिताजी ने कुछ साल पहले किसी साहब के यहाँ से एक मूर्ति खरीदी थी। उस पर मूर्तिकार का नाम नहीं है। पर साहब ने कहा था, खरीद कर रख लीजिए। एक दिन आपको जरूर इसकी कीमत मिलेगी।"

टेलीफोन करने वाले का पता नोट कर दीनबन्धु ने जानना चाहा था कि वह इसी वक्त उसके पास आ सकते हैं या नहीं?

"जल्दबाजी की कोई जरूरत नहीं। आप फुर्सत से आइए।"

"अगर आपको दिक्कत न हो तो मैं इसी वक्त आना चाहता हूँ!" दीनबन्धु अपनी उत्तेजना नहीं छुपा सके।

ढूंढ़-ढांढ़ कर हांफते हुए दीनबन्धु मिस्टर कलवार के यहाँ पहुँचे। मिस्टर कलवार पक्के व्यापारी थे। दीनबन्धु के आग्रह को वह भांप गए थे। बोले, "यह मूर्ति मैंने आइजैक साहब से खरीदी थी। इसके लिए मैंने बहुत रुपया दिया था।"

"आप मुझे वह मूर्ति एक बार दिखलायेंगे?" दीनबन्धु कातर कण्ठ से बोले।

कलवार दीनबन्धु को परख रहे थे। पर विनय से बोले, "अगर मूर्ति आप खरीदेंगे तो देखेंगे भी। अच्छी तरह से देखना भी चाहिए। पर इस समय आप उस मूर्ति का फोटो ही देखिए। आप ठीक उसी मूर्ति को ढूंढ़ रहे हैं या नहीं, यह भी तो देखना है न?"

फोटो देखते ही दीनबन्धु उस पर टूट पड़े। फोटो बिल्कुल अच्छा नहीं था। किसी अनाड़ी फोटोग्राफर की खींची हुई तस्वीर थी फिर भी दीनबन्धु को बबुआ को पहचानने में देर नहीं लगी।

मिस्टर कलवार दीनबन्धु को पैनी नजर से देख रहे थे। दीनबन्धु की उत्कण्ठा से उसके व्यापारी मन की उत्कण्ठा भी बढ़ रही थी।

उसने साफ-साफ पूछा, "यह मूर्ति किस चीज की बनी है? इसमे सोना तो नहीं है न?

संसार में सोने से भी कीमती चीजें हैं, यह बात दीनबन्धु कलवार को समझाते भी तो कैसे? दीनबन्धु बोले, "यह कांसे की मूर्ति है।"

"कांसे मे सोना मिला हुआ है?" कलवार का शक पूरा-पूरा मिटा नही था।

"तांबा, टीन और जस्ता, इन इन तीनो को मिला कर कांसा बनता है। इसमें सोना रत्ती भर भी नही होता।"

अचानक कलवार ने एक नई चाल चली। बोले, "फिलहाल मेरा उस मूर्ति को बेचने का कोई इरादा नहीं है।"

"आपको इसकी कितनी कीमत चाहिए?" दीनबन्धु ने पूछा।

रुपए की बात सुन कर कलवार थोड़ा नरम पड़े। नम्र भाव से बोले, "मैंने बहुत रुपए दे कर इस साहब से खरीदा था। आपको फिलहाल सिर्फ बीस हजार रुपए देने पड़ेंगे।"

"इतनी-सी मूर्ति के बीस हजार रुपए?" दीनबन्धु आर्तनाद कर उठे।

कलवार मुस्करा कर बोले, "ये कलाकृतियां है, वजन से इनकी कीमत नहीं आंकी जाती!"

पर दीनबन्धु बीस हजार रुपए कहां से लाते? बीच-बीच मे उन्हें काफी रुपए मिले थे। पर वह अधिकतर अपनी सच्चाई और निष्ठा को कायम रखने के लिए अपने खर्चे से मूर्ति बनाते थे। कई बार जो लोग आर्डर दे कर मूर्तियां बनवाते थे, वे उन्हे लेने भी नही आते थे।

"जल्दी की कोई बात नहीं। घर जा कर सोच लीजिएगा," कलवार बोले।

उन्होंने दीनबन्धु को एक बार मूर्ति दिखाई तक नहीं। बोले, "पहले

दाम तय कर लीजिए। देखना तो है ही।"

घर लौट कर दीनबन्धु बेचैनी से चहलकदमी करने लगे। उन्हें लगता था, वह पागल ही हो जायेंगे।

इस समय अगर सुतपा आती तो अच्छा रहता। पर इस समय वह आती क्यों? वह तो अपने समय से ही आने वाली थी!

सुतपा ठीक समय से ही आई थी। लगता था वह सारी रात सोई नहीं थी। मूर्ति उसके मन के लायक नहीं बनी थी, इस तुच्छ कारण से नींद न आने की बीमारी की विलासता पैसे वालों को ही शोभती है।

"दीनू दा, तुम यूरोप तथा अमेरिका चलो। वहाँ तुम्हारी कला की प्रदर्शनी होगी। सारी दुनिया तुम्हें जयमाल पहनाएगी। सारा इन्तजाम मैं खुद करूँगी," सुतपा दीनबन्धु को लालच दे रही थी। इसके बदले में वह दीनबन्धु से सामान्य-सी चीज चाहती थी। जिस रूप के बल पर रमा ने सेन-साम्राज्य पर विजय पाई थी, सुतपा काल के आँगन में उसी रूप में जीना चाहती थी। सुतपा बोली, "दीनू दा, तुम्हारे हृदय में क्या जरा भी दया नहीं? दूसरों की भाँति तुमने भी मेरे बाहर के ही ऐश्वर्य को देखा। मेरे अन्दर तुमने झाँका नहीं? क्या पाया मैंने जीवन में? क्या तुम जानते नहीं कि मेरा पति लम्पट और चरित्रहीन है? उन्हें मेरा रूप भी शान्त नहीं कर पाया। मेरा कोई नहीं, दीनू दा! मैं निःसंग हूँ। मुझसे सभी माँगते हैं, कोई मुझे कुछ देना नहीं चाहता।"

दीनबन्धु कुछ बोले नहीं। स्टुडियो के गोदाम से धूल हटा कर उन्होंने प्लास्टर का एक 'टोरसो' निकाला। मस्तकविहीन किसी सुन्दरी का यौवन में ढला शरीर। माडल खत्म होने के पहले ही वह प्लास्टर में ढाला गया था। देवीदास ने एक बार पूछा भी था, "इसे आपने अधूरा क्यों छोड़ रखा है, मास्टर साहब? इतने सुन्दर को अगर काँसे में ढाला जाता तो इसकी कद्र होती।" दीनबन्धु ने कोई जवाब नहीं दिया था। वह यह नहीं बता पाए कि वह क्यों इस मूर्ति को पूर्ण नहीं कर सके थे। क्योंकि उन्होंने कभी किसी सज्जन को वचन दिया था कि वह इसे कभी प्रकाश में नहीं लाएँगे।

"पहचान सकती हो?" 'टोरसो' को दिखाते हुए दीनबन्धु ने सुतपा

यातना दे रहे हो ?" सुतपा की आवाज से अभिमान टपक रहा था।

वह सोच रही थी, उसका दीनू दा शिल्प के दानव के हाथ पूरी तरह बिक चुका है। पर एकाएक वह चौंक उठी। उसे विश्वास ही नहीं हो रहा था कि यह बात उसके दीनू दा स्वयं बोल रहे हैं। दीनू दा बोल रहे थे, "तुम्हारी बात ही रहेगी। पर मेरी माँग कुछ अधिक है। इसके लिए मुझे बीस हजार रुपए चाहिये।"

वह राजी हो गई।

सुतपा सिंहासन पर बैठ गई। दीनबन्धु बिजली की गति से मिट्टी में खोई हुई रमा का चेहरा बनाने लगे। प्रौढ़ा सुतपा के चेहरे की सिकुड़न, थकावट की रेखाएँ और बुढ़ापे के चिह्न थोड़ी ही देर में जैसे गायब हो गए। अब सचमुच उस प्रतिमा में से सुन्दरी रमा झाँक रही थी। उसी रमा को सुतपा तहे-दिल से चाह रही थी। जब वह पूरी कीमत चुका रही थी, तब वह छोड़ती भी क्यों ? बोली, "मेरी नाक थोड़ी और नुकीली थी शायद।"

दीनबन्धु ने कुछ बोले बिना चाकू से मूर्ति की नाक को और भी नुकीली बना दी। वह लेडी सुतपा सेन के अनुगत चाकर की तरह काम कर रहे थे।

"अब पसन्द आई ?" दीनबन्धु निर्लज्ज की तरह पूछ रहे थे। वह आज सुतपा की एक-एक अभिलाषा पूरी करने वाले थे। उसको खुश रखने पर ही आज उनका अस्तित्व टिका रह सकता था।

इस बार वह सन्तुष्ट हुई। उसके मन में खुशी की कोई सीमा नहीं थी। बोली, "अच्छा मैं अब चलती हूँ। तुम्हारे रुपए मैं घर पहुँच कर भिजवा दूँगी।"

दीनबन्धु आज सारी लज्जा पी चुके थे। बोले, "अगर तुम बुरा न मानो तो क्या मैं तुम्हारे साथ चल सकता हूँ ? मुझे रुपये अभी दे सकोगी ?"

सुतपा हक्की-बक्की-सी खड़ी रही। दीनबन्धु घबरा कर बोले, "तुम समझ रही हो, काम खत्म नहीं हुआ तो मैं एडवांस रुपए ले कर कहीं तुम्हें

बरसाती निकाल कर उन्होंने मूर्ति को ढंक दिया। बड़े प्यार से पूछा, "कैसे हो बबुआ ?"

बाहर जोरों की बारिश शुरू हुई। दीनबन्धु फुस-फुसा कर बोले, "बबुआ, घर में तेरी माँ तेरी राह देख रही है !"

जन्माष्टमी में मध्यरात्रि की प्रचण्ड बरसात की परवाह किये बिना प्रकृति के साथ-साथ खुद भी रोते-बिसूरते रूपतापस दीनबन्धु अपने आत्मज को गोद में उठाए जनहीन राज

(समाप्त)